(Form No

U

The
the cond
order. T

last n

7 JAN



पृथ्वीराज की आँखें

संपादक
प्रथम देव-पुरस्कार-विजेता
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

रंगमंच पर खेलने-योग्य नाटक और प्रहसन

राजमुकुट (सचित्र)	१/, १॥/	ईश्वर-भक्ति	१/
कर्बला	१॥/, २/	सौभाग्य-लाड़ला नेपोलियन	॥/, १/
बुद्ध-चरित्र (सचित्र)	॥/, १/	कीचक	१/, १॥/
वरमाला (,,)	॥≈/, १≈/	मध्यम व्यायोग	=/, ≡/
पूर्व-भारत	॥।=/, १।=/	वीर भारत	॥/, १/
खाँजहाँ (,,)	१=/, १॥≈/	महाभारत (बेताब)	॥=/, ॥/
कृष्णाकुमारी (सचित्र)	१/, १॥/	रामायण (,,)	१/
अम्लायतन	॥/, १/	ज्योत्स्ना	१/, १॥/
ईश्वरीय न्याय	॥/, १/	समाज	॥=/, १।=/
सबबहादुर	॥/, १/	उत्सर्ग	।=/, ॥/
मूर्ख-मंडली	॥=/, १=/	कृष्ण-सुदामा	१/
प्रायश्चित्त-प्रहसन	≡/, ।-/	तुलसीदास	॥/, १/
लबड़धौंधौं (,,)	॥/, १/	रेशमी रूमाल	॥/
जयद्रथ-वध-नाटक	॥/, १/	शकुंतला	॥/, १/
विवाह-विज्ञापन	१/, १॥/	आहुति	१/, १॥/
पतिव्रता (,,)	१।=/, १॥।=/	दुर्गावती	१/, १॥/
प्रबुद्ध यामुन	१/, १॥/	प्राण-शय्या	।॥/
भारत-कल्याण	॥/	भयंकर भूत	१/
अछूत	१/		

[अन्यान्य नाटकों के लिये बड़ा सूचीपत्र मँगाइए]

हिंदोस्तान-भर की हिंदी-पुस्तकें मिलने का पता—

संचालक गंगा-ग्रंथागार

३०, अमीनाबाद-पार्क, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला का १५८वाँ पुष्प

पृथ्वीराज की आँखें

[एकांकी नाटक]

लेखक
द्वितीय देव-पुरस्कार-विजेता
प्रो० रामकुमार वर्मा एम्० ए०

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द १।)] सं० १९९३ वि० [सादी ।॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

उपहार



अँगरेज़ी, हिंदी और संस्कृत के प्रकांड पंडित
आचार्य-श्रेष्ठ प्रोफ़ेसर अमरनाथजी झा एम॰ ए॰ [इलाहाबाद-विश्वविद्यालय]

पूज्य पं० अमरनाथ झा एम्० ए०

को

समर्पित

रामकुमार वर्मा

(Form N

Th
the con
order.

last

7 JA

वक्तव्य

हिंदी-जगत् के यशस्वी कवि-श्रेष्ठ, आलोचक, आचार्य, नाटककार और इतिहासज्ञ अपने प्रिय भाई प्रोफेसर रामकुमार वर्मा की यह सुंदर कृति गंगा-पुस्तकमाला में पिरोते हुए मुझे अपार आनंद हो रहा है। उनकी रचनाएँ हिंदी-संसार की शोभा हैं। उनकी ललित 'चित्ररेखा' ने अभी इसी वर्ष सुप्रसिद्ध 'देव-पुरस्कार' विजय किया है। आपका 'कबीर का रहस्य-वाद' श्रेष्ठ आलोचनात्मक ग्रंथ है। वह अनेक विश्व-विद्यालयों में बी० ए० या एम्० ए० में पढ़ाया जाता है। छायावादात्मक प्रबंध-काव्यों में 'निशीथ' का सर्वोच्च स्थान है। 'रूपराशि' कमनीय कल्पना की कोमलता, भावुक भावना की भव्यता और सरस सहृदयता की वस्तु है।

इस पुस्तक में ६ एकांकी रूपक संगृहीत हैं। ये कितने श्रेष्ठ हैं, इसका निर्णय समालोचक-समुदाय स्वयं करेगा। हमें तो ये बहुत ही मनोरम मालूम हुए। इनमें जीवन के महान् सत्यों का जो चित्रण हुआ है, वह अत्यंत स्वाभाविक एवं परिष्कृत है। जर्मन आलोचक गेटे ने कला की यही तो परिभाषा दी है। एकांकी नाटकों का हिंदी में यही सर्वश्रेष्ठ संग्रह है। इनमें से किसी भी नाटक में अश्लीलता नहीं है। इसलिये यह संग्रह सरलता से

विद्यार्थियों के लिये पाठ्य पुस्तक के रूप में रक्खा जा सकता है। कहना न होगा कि साहित्यिक दृष्टि से सुंदर एकांकी नाटकों का निर्माण सबसे पहले रामकुमारजी ही ने किया है। इस क्षेत्र के पथ-प्रदर्शक का पद आप ही का है।

ईश्वर करे, भविष्य में और भी श्रेष्ठ ग्रंथ-रत्नों से वह हिंदी-भाषा का भांडार भरते रहें।

कवि-कुटीर, लखनऊ
१७।१२।३६

दुलारेलाल भार्गव



यशस्वी कवि, नाटककार और आलोचक
आचार्य रामकुमार वर्मा एम० ए०
[इलाहाबाद-विश्वविद्यालय]

पूर्वरंग

मेरा सबसे पहला एकांकी नाटक 'बादल की मृत्यु' है, जिसकी रचना सितंबर सन् १९३० में हुई थी। इसके बाद कविता के साथ एकांकी नाटकों की रचना भी होती रही, किंतु उसी समय, जब मेरी इच्छा किसी ऐसे चरित्र के निर्माण करने की हुई, जिसे मैं अपनी अभिनयात्मक कविता में भी प्रदर्शित नहीं कर सकता था।

धनंजय के 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' से भी मैं नाटक की परिधि बहुत दूर तक खींचना चाहता हूँ। मैं उसे केवल रूपक नहीं मानता, वरन् ऐसी 'वास्तविकता' अनुभव करता हूँ, जो आज की नहीं, भविष्य की भी निधि है। नाटक को वर्तमान परिस्थितियों का यथार्थवाद मानना बहुत साधारण-सी बात है। नाटक में तो अनंत काल से चले आनेवाले जीवन का वह यथार्थवाद हो, जो मनुष्यता के रक्त से बना हुआ है।

इसीलिये नाटक का रूप संघर्षमय है। यह संघर्ष या तो आंतरिक हो या बाह्य। आंतरिक संघर्ष हृदय के रहस्यों को प्रकाश में लाने में सहायक होता है। वह जीवन की अमर कृति है, साहित्य की अमर ज्योति है। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुंतल में शकुंतला को स्वीकार करने में दुष्यंत की भावनाओं का कैसा राजोचित और स्वाभाविक संघर्ष दिखलाया है!

शेक्सपियर जूलियस सीजर में ब्रूटस के हृदय में सीजर के प्रति अनुराग और देश के प्रति भक्ति में कैसा द्वंद्व उपस्थित करता है! यह मानव-जीवन का अनंत दर्शन है। बाह्य संघर्ष में शारीरिक शक्ति-प्रदर्शन अथवा द्वंद्व-युद्ध की अधिक प्रधानता है, और यह स्थिति रंगमंच पर मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करने में सफल होती है। मालती-माधव में माधव का मांस बेचना इसका साधारण उदाहरण है। नाट्यकला की दृष्टि से आंतरिक संघर्ष का महत्त्व कहीं अधिक है। यह दुःखांत नाटकों में तो और भी स्पष्ट और कलात्मक होकर सामने आता है। शेक्सपियर ने हैमलेट-नाटक की रचना में इस सत्य को कसौटी पर कसकर हमें जीवन के अपार ज्ञान का परिचय दिया है। उसमें बाह्य संघर्ष से रंगमंच रक्त-रंजित होकर ही नहीं रह जाता, प्रत्युत आंतरिक संघर्ष से निराश और अकर्मण्य हृदय की विवशता और आकांक्षा का अश्रु-सिंचित रहस्य शतमुख से उस पर हाहाकार करता है। हैमलेट में मनुष्यता का क्रंदन है, और मृत्यु की मुस्कान है।

अतः आंतरिक संघर्ष नाटक की सबसे प्रधान वस्तु है। इबसन ने तो मानव-चरित्र की उत्कृष्ट कल्पना ही नाटक की सबसे उत्तम कृति मानी है, और मानव-चरित्र की कल्पना विना आंतरिक संघर्ष के हो नहीं सकती।

मैंने इन नाटकों में आंतरिक संघर्ष की प्रधानता रखने की ही चेष्टा की है। 'चंपक' में किशोर का अंतर्द्वंद्व, 'नहीं का

रहस्य' में प्रो० हरिनारायण का मानसिक चित्र, 'पृथ्वीराज की आँखें' में पृथ्वीराज चौहान का सुदृढ़ चरित्र-सौंदर्य, 'बादल की मृत्यु' में बादल का मनोवेग आदि आंतरिक संघर्ष के चित्र हैं। बाह्य संघर्ष का विनोद मुझे विशेष रुचिकर नहीं। अतएव जो व्यक्ति रंगमंच पर तमाशा देखना चाहते हैं, उन्हें संभवतः मेरे नाटकों से निराशा हो। यदि हमारे रंगमंच पर जीवन अवतरित होना चाहता है, तो मैं नम्रता-पूर्वक अपने नाटकों को उपस्थित करने का साहस करता हूँ।

एकांकी नाटक में अन्य प्रकार के नाटकों से विशेषता होती है। उसमें एक ही घटना होती है, और वह घटना नाटकीय कौशल से ही कौतूहल का संचय करते हुए चरम सीमा (Climax) तक पहुँचती है। उसमें कोई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता। एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द प्राण की तरह आवश्यक रहते हैं। पात्र चार या पाँच ही होते हैं, जिनका संबंध नाटक की घटना से संपूर्णतया संबद्ध रहता है। वहाँ केवल मनोरंजन के लिये अनावश्यक पात्र की गुंजाइश नहीं। प्रत्येक व्यक्ति की रूप-रेखा पत्थर पर खिंची हुई रेखा की भाँति स्पष्ट और गहरी होती है। विस्तार के अभाव में प्रत्येक घटना कली की भाँति खिलकर पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं। घटना के प्रत्येक भाग का संबंध मनुष्य-शरीर के हाथ-पैरों के समान है, जिसमें अनुपात विशेष से रचना होकर सौंदर्य की सृष्टि होती है।

कथावस्तु भी स्पष्ट और कौतूहल से युक्त रहती है, और उसमें वर्णनात्मक की अपेक्षा अभिनयात्मक तत्त्व की प्रधानता रहती है। इस प्रकार एकांकी नाटक की रचना साधारण नाटक की रचना से कठिन है। उसमें विस्तार के लिये अवकाश ही नहीं। अतएव स्वाभाविकता के साथ नाटकीय कथावस्तु का प्रारंभ, विकास, चरम सीमा और अंत बिना किसी शैथिल्य के हो जाना चाहिए। जिस प्रकार कहानी उपन्यास से भिन्न है, उसी प्रकार एकांकी नाटक साधारण नाटक से। इन्हीं विचारों के आधार पर इन नाटकों की रचना हुई है।

मेरे इन नाटकों में कहीं-कहीं काव्य की छाया भी है। यह मेरे लिये स्वाभाविक है। इस क्षेत्र में जेम्स शरले के ट्रेटर्स और लव्स् क्रुएल्टी आदि नाटकों ने मुझे बल प्रदान किया है। पी० बी० शैली की सैंसी रचना भी मुझे विशेष रुचिकर है। शा के यथार्थवाद से तो कोई भी नाटककार प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

मेरे इन अंतर्द्वंद्वों की कहानी इन नाटकों के रूप में प्रस्तुत है। प्रायः सभी नाटक दुःखांत हैं, क्योंकि जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति करुणा की लेखनी से अधिक सफलता-पूर्वक लिखी जा सकती है। केवल कविता के क्षेत्र में ही नहीं, नाटकों के क्षेत्र में भी मेरा यही अनुभव है।

हिंदी-विभाग
इलाहाबाद-युनिवर्सिटी
२३।११।३६

श्रीरामकुमार वर्मा

नाटक-सूची

	पृष्ठ
१. चंपक	५
२. ऐक्ट्रेस	२५
३. नहीं का रहस्य	५१
४. बादल की मृत्यु	६६
५. दस मिनट	७५
६. पृथ्वीराज की आँखें	८६

पृथ्वीराज की आँखें

चंपक

पात्र-परिचय

चंपक —	एक छोटा-सा सुंदर कुत्ता	
किशोर —	हिंदी-साहित्य के सुकवि	आयु तीस वर्ष
शकुंतला—	एक संभ्रांत युवती	आयु बीस वर्ष
मालती —	शकुंतला की सेविका	आयु पच्चीस वर्ष
ललिता —	किशोर की छोटी बहन	आयु सात वर्ष
वृद्ध —	एक भिखारी	आयु पचास वर्ष

(Form

T
the cc
order.

last

7 JA

चंपक

[समय—सात बजे प्रभात। एक साफ़-सुथरा कमरा। अनेक स्थानों पर सुंदर चित्र लगे हैं। एक अलमारी में कुछ पुस्तकें सजी हुई हैं। कमरे के बीच में एक बड़ा-सा क़ालीन बिछा हुआ है, जिससे कमरे की शोभा और भी बढ़ गई है। एक ओर छोटी टेबिल है, जिस पर ताज़े फूलों का एक गुलदस्ता रक्खा हुआ है। जो वस्तुएँ वहाँ हैं, उनसे यह प्रकट होता है कि इस कमरे में रहनेवाला कवि-हृदय अवश्य है। सजावट में ही सभी वस्तुओं की रूप-रेखा है। खिड़की से पूर्वीय आकाश दिखाई पड़ता है, जिसमें सुनहले बादल छाए हुए हैं। कमरे को जैसे बसंत आकर चूम गया है।

कमरे में दाहनी ओर कुर्सी पर एक युवक बैठा है। उसका नाम है किशोर। आयु तीस वर्ष के लगभग। वस्त्रों में स्वच्छता और सुरुचि है। आँखों में गांभीर्य। बाल बड़े-बड़े, घुँघराले हैं, जो उसकी पीठ पर छा रहे हैं। उसके समीप टेबिल पर एक छोटा-सा कुत्ता बैठा हुआ है। उसके बड़े-बड़े बाल हैं। माथे में सफ़ेद चिह्न। किशोर बड़े प्रेम से कुत्ते पर हाथ फेरकर कहता है, जैसे स्वप्न-मग्न हो।]

किशोर—चंपक, एक बार तुम्हें देख लेता हूँ, तो जान पड़ता है, [खिड़की की ओर दृष्टि कर] प्रभात का नन्हा-सा बादल आँखों में झूल गया है। ये देखो, [कुत्ते के कान कोमलता से छूते हुए] तुम्हारे कान, जैसे रेशम के दो छोटे-छोटे टुकड़े ईश्वर ने तुम्हारे सिर के समीप गूँथ दिए हैं। तुम्हारी कोमल पूँछ इंद्र-धनुष के समान

झुकी हुई है, और तुम्हारी आँखें ? क्यों ? मेरी बोली समझते हो चंपक ?........[रुककर] लोग कहते हैं, मैं कवि हूँ। पर मेरी कविता तुम्हारे सुनहले बालों के कारण ही सुनहली है। [चंपक को गोद में रखते हुए] .... उस दिन तुम्हें देखकर एक कविता लिखी थी—

[स्वर में]

रेशम-सी इस केश-राशि में
उलझा रहे मधुर जीवन ;
मेरे मन में यह तन हो,
इस तन में ही हो मेरा मन।

[भाव-मग्न होकर]

इस ... तन .... में .. ही .. हो ...
मेरा .. मन ... .।

[बाहर किसी के आने का शब्द होता है।]

किशोर—[तीव्र स्वर में] कौन ?

स्वर—महाशयजी, मैं आ सकती हूँ ?

किशोर—[स्वगत] किसी रमणी का कोमल कंठ-स्वर ! [प्रकट] आइए।

[दो युवतियों का प्रवेश। दोनों लगभग एक ही वय की हैं। पचीस वर्ष। एक अधिक क़ीमती वस्त्र पहने हुए है। रेशमी सारी से कोमल शरीर सजा हुआ है। उसकी मुद्रा से ज्ञात होता है कि वह एक संभ्रांत परिवार की महिला है। नाम है शकुंतला। उसके हाथ में एक समाचार-पत्र है। दूसरी युवती उसकी सेविका मालूम पड़ती है। वह साधारण वस्त्र पहने हुए है। सदैव अपनी स्वामिनी का रुख देखकर बातें करती है। उनके आते ही किशोर खड़ा हो जाता है। सेविका का नाम है मालती।]

शकुंतला – [जिज्ञासा की दृष्टि से] आप ही का नाम किशोर है ?

किशोर—[आगे बढ़कर] जी, हाँ ।

मालती—वही, जिनकी कवितायें 'रसाल-वन' में निकला करती हैं ?

किशोर—हाँ, वही ।

शकुंतला—जिनकी 'चंपक'-शीर्षक कविता ने हिंदी-संसार में हलचल मचा दी है ?

किशोर—[मुस्कुराकर] इस प्रशंसा के लिये धन्यवाद । मैं वही किशोर हूँ ।

युवती—[समाचार-पत्र देखते हुए] आपने इस समाचार-पत्र में सूचना प्रकाशित की है कि आप एक सुंदर कुत्ता बेचना चाहते हैं ।

मालती—क्या वह यही है ?

[कुत्ते की ओर संकेत]

किशोर—हाँ, वह यही है ।

शकुंतला – [प्रश्न-सूचक दृष्टि से] क्यों, क्या मैं जान सकती हूँ कि आप इसे क्यों बेचना चाहते हैं ?

किशोर – [गहरी साँस लेकर] इसकी एक लंबी कहानी है । उसे पूछने की आवश्यकता नहीं । यदि आप इसे खरीदना चाहती हैं, तो यह आपकी सेवा में उपस्थित है । लीजिए ।

शकुंतला—आपकी कहानी ही मेरे लेने-न लेने का कारण हो सकती है ।

मालती—निस्संदेह ।

किशोर—यदि ऐसी बात है, तो सुनिए । [सोचते हुए] पिछले महीने की बात है । हलका जाड़ा पड़ रहा था । शुक्ल पक्ष की रात थी । चंद्र की शीतल किरणें पृथ्वी का सारा विषाद धो रही थीं । ...

शकुंतला—इस कहानी में कविता भी है ?

[हास्य]

किशोर—या कविता में कहानी है।

शकुंतला—[मुस्कुराकर] क्षमा कीजिए। मैं भूल गई थी कि मैं एक कवि से बातें कर रही हूँ। अच्छा, फिर क्या हुआ?

किशोर—[गंभीर स्वर में] मैं टहलने के लिये एकांत स्थान में जा रहा था कि एक ओर यह कुत्ता पड़ा हुआ अपने जीवन की अंतिम साँसें छोड़ रहा था—मुझे करुण नेत्रों से देखकर।

शकुंतला—[उत्साह से] तब तो आप बड़े अच्छे हैं। आज यह कितनी अच्छी दशा में है!

[कुत्ते की ओर ध्यान से देखती है।]

मालती—[शकुंतला के स्वर में] देखिए, कितनी अच्छी दशा में है!

किशोर—[उसी गंभीर स्वर में] मैं उसे उठा लाया। बहुत सेवा की। जो कुछ मेरे पास था, मैंने इसे अच्छा करने में समाप्त कर दिया। अब यह कैसा गुलाब-सा सुंदर और हृदय-सा चंचल हो रहा है।

शकुंतला—[प्रशंसा के स्वर में] आपका परिश्रम, सफल परिश्रम। यदि इस कुत्ते के मन में समझने की शक्ति है, तो आप ही इसके ईश्वर हैं, जीवनदाता हैं।

किशोर—ईश्वर तो एक बहुत बड़ी शक्ति है। मेरे हाथ तो मेरे जीवन के समान ही निर्बल हैं। मैं कर ही क्या सकता हूँ? केवल सेवा, केवल प्रेम।

शकुंतला—कविवर, मेरे लेखे यही ईश्वरत्व है।

मालती—[युवती की ओर देखकर] निस्संदेह।

किशोर—उस दिन से यह चंपक मेरे जीवन का सब कुछ हो गया………।

शकुंतला—[बीच ही में हर्ष से] चंपक ! ओहो, नाम भी आपने कितना सुंदर रक्खा है ! चंपक !!

मालती—कितना सुंदर ! चं प क !!

किशोर—प्यारा चंपक ! इसे देखते ही न-जाने क्यों मेरे मन में यह नाम आ गया ! शायद इसमें इतना सौंदर्य है । [चंपक को हाथ में उठा लेता है ।] कुरूपता के काले भौंरे को यह अपने समीप नहीं आने देना चाहता ।

शकुंतला—[उल्लास से] सचमुच !

किशोर—[चंपक पर हाथ फेरते हुए] मैं जब टहलने जाता हूँ, तो धूम्रकेतु की भाँति मेरे पीछे इसी की रेखा होती है । मुझे भय होता है, कहीं इसके पैर मैले न हो जायँ । जब मैं भोजन करता हूँ, तो मेरे समीप बैठकर मेरे जूठे भोजन की लालसा करता है । मुझे भय होता है, कहीं कड़ी रोटी इसके मुँह में पहुँचकर कष्ट न दे । इसलिये मैं स्वयं कड़ी रोटी खाकर इसके लिये कोमल हिस्सा छोड़ देता हूँ । जब मैं सोता हूँ, तो मेरे पैरों के समीप आकर मेरे लिहाफ़ में छिप रहता है । बहुत धीरे से मेरे पैरों पर अपना सिर रख देता है, मानो रात-भर मेरे चरणों के समीप बैठकर मेरी आराधना करता रहता है । मुझे भय होता है, कहीं सोते में उसके मुख पर मेरा पैर न पड़ जाय । जब मैं कविता करता हूँ, तो इसके कोमल बालों पर हाथ रखकर...

[स्वर से धीरे-धीरे]

रेशम-सी इस केश-राशि में
उलझा रहे मधुर जीवन ;
मेरे मन में यह तन हो,
इस तन में ही हो मेरा मन ।

शकुंतला—ये तो उसी 'चंपक'-शीर्षक कविता की पंक्तियाँ

हैं। फिर, महाशय, जब यह चंपक आपको इतना प्रिय है, तो इसे बेचने की कल्पना तो बहुत ही कठिन है ?

मालती—[उसी स्वर में] बहुत ही कठिन।

किशोर—हाँ, दीखता तो यही है, पर मुझे उसकी कल्पना ही नहीं, सत्यता का भी पालन करना है।

शकुंतला—कैसे ?

किशोर—मैं इसकी सेवा कर चुका। अब यह अच्छा है ! वसंत के समान उज्ज्वल और सुंदर। अब मुझे इसे बिदा ही कर देना चाहिए।

शकुंतला—मैं नहीं समझ सकी।

[जिज्ञासा की दृष्टि]

किशोर—इतनी लंबी कहानी कहने पर भी नहीं समझ सकीं ? मेरा प्रेम दुःख और वेदना का बंधु है। इस संसार में जहाँ दुःख और वेदना का अथाह सागर है, वहाँ ऐसे प्रेम की अधिक आवश्यकता है।

शकुंतला—[कौतूहल से] पर इससे और चंपक से क्या संबंध ?

किशोर—[लंबी साँस लेकर] मैं केवल उसी को प्यार करना चाहता हूँ, जिसका साथ देने में सबको आपत्ति है। उसी का साथी मैं बनना चाहता हूँ। जिसकी साँस में हवा के स्थान में वेदना है, उसी के समीप रहकर मैं उसकी सेवा करना चाहता हूँ। अब चंपक दुःखी नहीं है। उसकी करुणा-जनक परिस्थिति अब निकल गई। अब वह सुखी है।

शकुंतला—तो उसे बेच डालने से लाभ ?

किशोर—बहुत लाभ है। इसके साथ रहने के कारण मेरे जीवन का बहुत-सा समय अब उसकी सेवा में नहीं, उसके लाड़-प्यार में

निकल जाता है। इससे मैं अन्य पीड़ितों की सहायता नहीं कर सकता। लाड़-प्यार तो समय-कुसमय सभी कर सकते हैं। उस दिन यह चंपक रास्ते में घायल पड़ा था। मैं इसके दुःख को नहीं देख सका। ले आया। एक महीने की सेवा से यह अच्छा हो गया। अब इसे छोड़ देना पड़ेगा। किसी दूसरे दुःखी की खोज करनी होगी। अब उसकी सेवा करूँगा।

शकुंतला—पर इससे आपको वेदना न होगी ?

किशोर—यही मेरा जीवन है। दूसरों की वेदना मैं अपने जीवन में रखकर उसे सुखी कर देना चाहता हूँ। लोग कहते हैं, मेरा जीवन एक करुण गान है, पर उस करुण गान का सबसे मीठा स्वर है यह चंपक। इसे भी अब दूर कर किसी दूसरे मीठे स्वर की खोज करूँगा।

[गंभीर मुद्रा]

शकुंतला—[विस्मय से] आप वास्तव में कवि हैं, और जीवन के महान् कवि हैं।

मालती—सचमुच।

किशोर—मैं अपनी प्रशंसा नहीं सुनना चाहता। आप मेरे चंपक को लेंगी ?

शकुंतला—आपकी कहानी से तो चंपक का मूल्य बहुत बढ़ गया। अब तो मैं अवश्य लूँगी।

किशोर [गंभीर स्वर में, जैसे पिछली बातों को नेत्रों से देख रहा हो] कई ख़रीदनेवाले आए, पर मैंने उन्हें न दिया, यद्यपि वे इसकी बड़ी ऊँची क़ीमत लगा रहे थे। मैंने सोचा, किसी ऐसे व्यक्ति को दूँ, जो चंपक का मूल्य समझे। आपके हृदय ने मेरे चंपक को पहचाना है। मुझे लाभ ही क्या होता, यदि ऊँची क़ीमत देकर वे लोग मेरे चंपक को दुःख से रखते या उस प्रकार न रखते, जिस

प्रकार मैं चाहता हूँ। चंपक को संभवतः फिर पहले-जैसी दशा हो जाती। मुझे क़ीमत प्यारी नहीं है। मुझे अपनी चीज़ प्यारी है, वह भी बेची जानेवाली। आप मेरा आशय समझ रही हैं ?

शकुंतला—[उत्साह से] हाँ, मैं आपके हृदय को समझ रही हूँ। दीजिए यह चंपक मुझे। [मालती की ओर देखकर] मालती, उठा लो यह प्यारा चंपक। इसे हम लोग बहुत प्यार से रक्खेंगे। मैं कवि के समान तो शायद प्यार न कर सकूँ, पर... ।

[मालती चंपक को उठाती है।]

किशोर—नहीं, आप मेरे ही समान, मुझसे अधिक प्यार कर सकेंगी। आपके पास स्त्री-हृदय है, जिसमें करुणा अमृत बनकर बहा करती है।

शकुंतला—[लज्जित होकर] धन्यवाद ! [चंपक को छूते हुए, बात बदलने के विचार से] कितना सुंदर है यह। माथे में सफ़ेद चिह्न है, जैसे प्रकृति ने इसे तिलक लगा दिया है। कोमल शरीर जैसे कपास की राशि हो !

किशोर—इसके पैर भी कैसे सफ़ेद हैं, जैसे सुधा इसके चरणों को चूम रही है ! बाल इतने बढ़ आए हैं, मानो वे आपसे बातें करने के लिये समीप आना चाहते हैं।

शकुंतला—अच्छा, मैं इसका कितना मूल्य दे दूँ ?

किशोर—जितना आप चाहें। मुझे मूल्य की आवश्यकता नहीं। मैं अपने अमूल्य चंपक को उपहार-स्वरूप आपको दे देता, पर मुझे दुखियों की सेवा करने के लिये पैसों की आवश्यकता पड़ती है। यह रूखा संसार हृदय की कोमल भावनाओं को प्रमाणित करने के लिये रुपयों का माप-दंड चाहता है।

शकुंतला—तब मैं अधिक-से-अधिक दूँ।

किशोर—जैसी इच्छा। आपका शुभ नाम ?

शकुंतला—मेरा नाम शकुंतला। पर नाम से क्या ?

किशोर—क्यों नहीं ? मेरे चंपक की रक्षा करनेवाली का नाम धर्म से भी अधिक पवित्र है। वह नाम ईश्वर के नाम के साथ लिया जा सकता है।

शकुंतला—[मुस्कुराकर] आप तो उस पर कविता भी लिख सकते हैं। लीजिए ये सौ रुपए। [मालती से] मालती, ले चलो चंपक को। मैं जाऊँ ? नमस्ते।

मालती—चलिए।

[दोनों उठ खड़ी होती हैं।]

किशोर—[उठकर] आप जा रही हैं ? ठहरिए। एक मिनट। मैं अपने चंपक को देख लूँ। उसे एक बार चूम लूँ।

शकुंतला—[प्रसन्नता से] एक नहीं, अनेक बार। [मालती से] मालती, कविवर को चंपक दे दो।

[किशोर मालती से लेकर चंपक को हृदय से लगाकर चूमता है। करुणार्द्र नयनों से मालती को देते हुए चंपक को फिर एक बार हृदय से लगाकर आँखें बंद कर लेता है। चंपक को सामने करते हुए कहता है, जैसे मूर्च्छा-सी आ रही है।]

चंपक, मेरे घायल होनेवाले चंपक ! तुम जा रहे हो ? तुम्हारा पैर अच्छा हो गया। जाओ। सुख से रहो। मेरे चंपक, तुम्हें फिर एक बार वही गीत सुना दूँ ?

[स्वर से]

रेशम-सी इस केश-राशि में
उलझा रहे मधुर जीवन।

पर....पर अब तो तुम जा रहे हो। मेरा जीवन तुमसे कैसे उलझा रहेगा ? मेरा क्या ? जाओ। मेरे चंपक !

[चूमता है।]

[शकुंतला और मालती किशोर को अनिमेष देख रही हैं। किशोर चंपक को मालती के हाथों में रखता है।]

शकुंतला – [करुणार्द्र होकर] कविवर, आपका यह प्रेम देखकर मुझे वेदना हो रही है।

किशोर - [दृढ़ता से] नहीं, यह तो चंपक की प्रशंसा है। अच्छा, अब आप जा सकती हैं। धन्यवाद ! नमस्ते।

[शकुंतला और मालती चंपक को लेकर धीरे-धीरे जाती हैं। जब तक चंपक दिखाई पड़ता है, किशोर अनिमेष नेत्रों से उसे देखता रहता है। दृष्टि से ओझल होने पर एक गहरी साँस लेता है। मुद्रा में वेदना।]

किशोर—[टहलता हुआ, धीरे-धीरे]

मेरे . मन.. में... यह तन हो,
इस तन में ही हो मेरा मन।

[विरक्ति से]

उँह .....अब तो वह गया। सदैव के लिये। [सोचकर] चंपक, चंपक ! तुम घायल ही रहते, तो अच्छा था। मेरे अच्छे होने-वाले चंपक ! तम अच्छे ही क्यों हुए ? अच्छे क्यों हुए ?

[ललिता का प्रवेश। वह सात वर्ष की बालिका है। बड़ी चंचल और मचलनेवाली। तितली की तरह उड़ती आती है। उसके माथे पर बाल फैल रहे हैं, पर सुंदरता के साथ। उसके हाथ में रोटी है। आते ही वह बड़ी उत्सुकता के साथ बोलती है।]

भैया ! चंपक कहाँ है ? मैं यह रोटी उसे खिलाने के लिये लाई हूँ।

[कमरे में चारो तरफ़ देखती है, जैसे कोई चीज़ खो गई है। उत्सुकता से]

चंपक कहाँ ?

किशोर—चंपक? चंपक एक दूसरी जगह चला गया है। ललिता, मेरी बहन !

[ललिता के बिखरे बालों को सँवारता है।]

ललिता—कहाँ ?

किशोर—जहाँ उसे बहुत आराम मिलेगा। अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ खाने को मिलेंगी। तुम तो यहाँ उसे रोटियाँ ही खिलाती थीं, वे भी सूखी।

ललिता—[निराशा से] तो अब वह यहाँ न आवेगा ?

किशोर—नहीं।

ललिता—क्यों ? [साश्रु-नयन]

किशोर—तुम उसे अच्छा खाना नहीं खिलाती थीं।

ललिता—अच्छा, तो उसे ला दीजिए। अब से मैं उसे अच्छा खाना खिलाऊँगी। मिठाइयाँ खिलाऊँगी।

किशोर—सचमुच ?

ललिता—हाँ, सचमुच। जाइए। मेरे चंपक को जल्द लाइए।

किशोर—[दीवार की ओर शून्य दृष्टि से देखता हुआ] वह मुझसे नाराज़ हो गया है। अब न आवेगा।

ललिता—मुझसे तो नाराज़ नहीं हुआ। मैं उसे अपने पास रक्खूँगी। आपसे कोई मतलब नहीं।

किशोर—नाराज़ी से उसने कहीं मुझे काट लिया, तो !

ललिता—नहीं काटेगा। मैं उससे कह दूँगी। आप जाइए। उसे जल्दी लाइए।

किशोर—[अस्थिर होकर, स्वगत] क्या करूँ ? [प्रकट] सुनो, चंपक को तुम्हारी बहन ले गई हैं। मैं उनसे कह दूँगा कि वह ललिता के पास चंपक को कभी-कभी ले आया करें।

ललिता—कौन बहन ?

किशोर—तुम्हारी एक बहन हैं, उनका नाम है शकुंतलादेवी।

ललिता—मैं किसी को नहीं पहचानती। आप मेरे चंपक को ला दीजिए।

[रोने लगती है।]

किशोर—[आश्वासन देते हुए] अच्छा, अभी जाता हूँ। अगर चंपक नहीं मिलेगा, तो उससे अच्छा चंपक लाऊँगा। तुम उसके लिये अच्छी-अच्छी रोटी तैयार करो।

ललिता—नहीं, मैं मिठाई खिलाऊगी।

किशोर—[मुस्कुराकर] अच्छा, मिठाई ही सही। जाओ। मिठाई तैयार करो। मैं भी चंपक की खोज में जाता हूँ।

[ललिता जाती है।]

[किशोर बाहर जाने के लिये कपड़े पहनता है। इतने में ही बाहर से एक स्वर]

भूखे को एक रो ओ टी ....।

किशोर—कौन है ?

[एक पचास वर्ष के वृद्ध का प्रवेश। उसके कपड़े फटे हुए हैं। सारा शरीर रूखा और कुरूप। उसका दाहना पैर टूट गया है, जिससे उसे लँगड़ाकर चलना पड़ता है। उसके हाथ में एक लाठी है। उसके सहारे वह अपने शरीर का बोझ रक्खे हुए है। वह कराहता हुआ-सा बोलता है—]

भूखे को एक रोटी दे दो।

किशोर—[समवेदना के स्वर में] तुम भूखे हो ?

वृद्ध—[दुःख से] मैंने चार दिन से अन्न नहीं देखा। माँगते-माँगते हैरान हूँ। लोग हँसी उड़ाकर मेरे सामने ही लँगड़े बनने की नक़ल करते हैं। चिढ़ाते हैं। गाली देते हैं।

किशोर – गाली देते हैं? बड़े ख़राब हैं। तुम मेरे पास क्यों नहीं चले आए?

[सहारा देता है।]

वृद्ध—[उल्लास से] ओह, मालूम कहाँ था कि तुम्हारे समान देवता भी इसी जगह रहते हैं।

किशोर—[नम्रता से] देवता नहीं, सेवक कहो।

[समीप की कुर्सी पर बिठलाता है।]

वृद्ध—[बैठते हुए] सेवक कहूँ, तो देवता किसे कहूँ? आज तुम्हारे घर आकर समझ रहा हूँ कि यह संसार बिलकुल बुरा नहीं है।

किशोर—अच्छा, पहले खाना खाइए। फिर अपनी कहानी कहिए। मैं अभी आपके लिये खाना मँगवाता हूँ। [ज़ोर से] ललिता, खाना लाना।

ललिता—[नेपथ्य से] क्या चंपक आ गया? मेरा चंपक! [प्रवेश] मेरा चंपक! [चंपक को न देखकर निराशा की दृष्टि से] चंपक कहाँ है?

किशोर—चंपक नहीं है। ये भूखे महाशय आए हुए हैं। इनके लिये थोड़ा खाना लाओ।

ललिता—[चिढ़े हुए स्वर में] मैं चंपक के सिवा किसी को खाना न दूँगी।

किशोर—[ज़ोर देकर, दृढ़ता से] लाओ खाना। मैं कह रहा हूँ, खाना लाओ। और जल्दी।

[ललिता निराश और दुःखी होकर जाती है।]

किशोर—[वृद्ध से] क्षमा कीजिए। खाना अभी आता है।

वृद्ध—[सोचते हुए] यह चंपक कौन?

किशोर—चंपक? एक छोटा-सा प्यारा कुत्ता था। अब वह मेरे पास नहीं है। छोटी बहन उसके लिये बहुत दुखी है।

वृद्ध—वह कहाँ गया ?

किशोर—उसे मैंने बेच दिया।

वृद्ध—क्यों ?

[जिज्ञासा की दृष्टि]

किशोर—जिससे वह अधिक सुखी रहे, और मैं दुखियों की सेवा कर सकूँ।

वृद्ध—क्या उसके रहने से दुखियों की सेवा नहीं हो सकती ?

किशोर—नहीं, जब तक वह घायल था......... ।

वृद्ध—[चौंककर] घायल...............?

किशोर—हाँ, घायल। उसका पैर टूट गया था। ख़ून बह रहा था। मैंने उसकी थोड़ी सेवा की। वह एक महीने में अच्छा हो गया। उससे मेरा बहुत मोह हो गया था। उसके कारण मेरे सेवा-कार्य में बहुत बाधा पड़ती थी। जब वह अच्छा हो गया, तो मैंने उसे अपने से अधिक संभ्रांत युवती के हाथ बेच दिया, जिससे वह अधिक सुख के साथ रह सके, और मैं अपना कर्त्तव्य कर सकूँ।

वृद्ध—[स्वप्न-सा देखता हुआ] घायल हो गया था। उसके पैर में चोट थी ?

किशोर—हाँ, आगे का पैर तो उठ ही नहीं सकता था।

वृद्ध—[गंभीरता से, धीरे-धीरे] आगे...का...पैर...। उसके माथे में सफ़ेद चिह्न था ?

किशोर—हाँ, जैसे प्रकृति ने उसे सफ़ेद तिलक लगा दिया है।

वृद्ध—[करुणा से] तब मैंने ही उसे मारा था, मैंने ही उसे चोट पहुँचाई थी।

किशोर—आपने ? [साश्चर्य]

वृद्ध—[वेदना से] हाँ, मैंने ही।

किशोर—यह कैसे ?

वृद्ध—वह मेरे पड़ोसी का पालतू कुत्ता था। बहुत प्यारा। उन्होंने उसे बड़े प्रेम से पाल-पोसकर बड़ा किया था। वह इतना सीधा और चतुर था कि हमेशा घर के बच्चों का खिलौना बना रहता था। उसके खाने के लिये बाज़ार से मिठाइयाँ मँगवाई जाती थीं। दिन-भर में उसे न-जाने कितनी चीज़ें खिला दी जाती थीं। एक दिन मैं बहुत भूखा था। मुझे दो रोज़ से खाना न मिला था। उस दिन मैंने उनके यहाँ जाकर खाना माँगा। मुझे तो खाना न दिया गया, मेरे ही सामने कुत्ते को पूरियाँ खिलाई गईं। मैं कुत्ते का इतना लाड़-प्यार न देख सका। यह जलन मेरे हृदय में इतनी बढ़ी कि एक दिन मैंने उसे चुराकर ख़ूब पीटा, और जब उसकी टाँग टूट गई, तो अँधेरे में दूर ले जाकर रास्ते में फेंक दिया ।

किशोर—ओह ! बड़े निर्दयी हैं आप।

वृद्ध—[अपने ही स्वर में] लोगों ने समझा, वह मर गया या किसी के द्वारा चुरा लिया गया। मेरे पड़ोसी के बच्चे उस कुत्ते के लिये बहुत दिनों तक रोते रहे। मेरे सामने ही वे धूल में लोटते और गलियों-गलियों अपने कुत्ते को खोजते फिरते। एक बच्चे के मन पर तो कुत्ते के खो जाने का इतना सदमा पहुँचा कि वह एक महीने तक बीमार रहा। वह कुत्ता घायल अवस्था में कितने दिनों तक पड़ा रहा, यह मैं नहीं जानता।

किशोर—ओफ़्, इतनी निर्दयता !

[आँखें बंद कर लेता है।]

वृद्ध—उस समय न-जाने मेरे हृदय में इतनी जलन कैसे हो गई थी ! कुत्ते इतने लाड़-प्यार से पाले जायँ, और भूखे मनुष्यों की ओर समाज ध्यान भी न दे ! कुत्ते मख़मली गद्दों पर सुलाए जायँ, और हम ग़रीबों को सोने के लिये टाट भी नसीब न हो ! कुत्ते दूध-

मलाई खायँ, और हम लोग सूखे टुकड़ों के लिये तरसें ! उनका अलफ्रेड-पार्क में प्रदर्शन हो, और हम लोग....... !

किशोर—पर तुम्हीं सोचो, इसमें उन बेचारे कुत्तों का क्या दोष ?

वृद्ध—[रुककर] हाँ, यह बात सोचने पर मुझे पीछे मालूम हुई। उसी अपराध की सज़ा तो शायद मुझे नहीं मिली ? एक हाथ भरकर मैंने अपनी लकड़ी जैसे ही कुत्ते पर मारी, वैसे ही, उसके थोड़े से हट जाने के कारण, वह मेरे पैर में आ लगी, और कुत्ते के साथ मैं भी लँगड़ा हो गया। पहले तो भूख का ही दर्द था, अब पैर का भी हो गया। तब से लँगड़ा हो गया हूँ।

[वेदना की आह]

किशोर—आह ! आपने मेरे चंपक को इतना दंड दिया ! निरपराध चंपक को !

वृद्ध—हाँ, रोटी के सिवा जो चाहे दंड दो, मैं सब सह लूँगा।

किशोर—महाशय, क्या ईश्वर की दृष्टि में यह दोष क्षम्य हो सकता है ? ओह, एक निरपराध को इतना दंड ! यदि तुम भूखे और लँगड़े न होते, तो तुम्हें इस पाप के लिये बहुत कुछ करना पड़ता। जान-बूझकर पाप करनेवाले ! ईश्वर से क्षमा माँगो।

वृद्ध—[विकृत स्वर से] मैं बहुत दिनों से ईश्वर से क्षमा माँग रहा हूँ। पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हूँ। ईश्वर से मैंने क्षमा माँगी, तुमसे रोटी माँगता हूँ। मैं भूखा हूँ, मुझे रोटी दो।

किशोर—अभी रोटी आ रही है। बिलकुल ताज़ी। साथ-साथ ललिता के हाथ की बनाई हुई मिठाई भी। अच्छा, तुम्हारे पैर की चोट कैसी है ?

वृद्ध—बहुत दर्द है !

किशोर—तो मेरे यहाँ ठहरो। मुझे अपनी सेवा करने का अवसर दो। जब तुम्हारा पैर अच्छा हो जाय, तब तुम चले जाना।

तब तक यहीं रहकर मुझे अपने सत्संग का अवसर दो। पहले निरपराधी की सेवा करता था, अब अपराधी की सेवा करूँगा।

वृद्ध—[आँखें फाड़कर] एँ ... [धीरे-धीरे किशोर के शब्दों को दुहराता हुआ] पहले...निरपराधी...की...सेवा... करता... था,...अब...अपराधी...की...सेवा...करूँगा। ओह, तुम देवता हो! बतलाओ, तुमने अपना चंपक किसे बेच दिया है?

किशोर—क्यों? एक संभ्रांत युवती शकुंतलादेवी को।

वृद्ध—[अस्थिर होकर] तो....तो .. मैं वहीं जाऊँगा, शकुंतलादेवी के यहाँ भीख माँगकर, नौकरी कर चंपक की सेवा करूँगा। तभी मुझे शांति मिलेगी। चंपक! चंपक! अच्छा, मैं अब जाता हूँ।

किशोर—जाना। ज़रूर जाना। पर पहले अपना पैर तो अच्छा हो जाने दो।

वृद्ध—[दृढ़ता से] नहीं। अब मैं अपना पैर अच्छा न होने दूँगा। यह मेरे पश्चात्ताप की स्मृति होकर रहेगा। उसके दर्द से कराहूँगा, और अपने पश्चात्ताप की अग्नि में जलूँगा। एक दिन इसी तरह मर जाऊँगा। अब मैं अच्छा होना नहीं चाहता। मैंने बड़ा भारी पाप किया है। पहले चंपक को जितना मारा था, उससे अधिक उसकी सेवा जब कर लूँगा, तभी मुझे थोड़ी शांति मिलेगी। तुमने एक पल-भर में मुझमें इतना बड़ा परिवर्तन ला दिया। सेवा का इतना बड़ा आदर्श बतला दिया। [किशोर के शब्दों को पुनः दुहराते हुए, धीरे-धीरे] पहले ...निरपराधी ...की ...सेवा ... करता...था,...अब...अपराधी ..की...सेवा...करूँगा। देवता! स्वर्ग के देवता! तुम पृथ्वी पर कैसे? [चौंककर] शकुंतलादेवी का मकान कहाँ है?

किशोर—विक्टोरिया-पार्क के समीप।

वृद्ध—तो मैं वहीं जाऊँगा।

[उठकर चलना चाहता है।]

किशोर—[उत्सुकता से] खाना तो खाते जाइए।

वृद्ध—अब मुझे भूख नहीं है।

किशोर—एक मिनट ठहरिए।

वृद्ध—नहीं, अब मैं जाऊँगा।

[प्रस्थान]

किशोर—[ज़ोर से] ललिता!

ललिता—[प्रवेश कर] क्या है भैया? चंपक नहीं आया? खाना तैयार है। अच्छी मिठाई भी तैयार है। मैंने अपने हाथ से छोटे-छोटे लड्डू चंपक के लिये तैयार किए हैं। चंपक कहाँ है?

[नेत्रों में उत्सुकता और करुणा]

किशोर—[ललिता को चूमकर] नहीं, मेरी ललिता! चंपक नहीं आया। वह भी गया, और उसका मारनेवाला भी।

ललिता—[आँखों में आँसू भरकर] कैसा मारनेवाला?

किशोर—वही भूखा भिखारी। वह भी गया। कल मैं शकुंतलादेवी से तुम्हारे लिये थोड़ी देर को चंपक माँग लाऊँगा। तुम उसे अच्छी-अच्छी मिठाई खिलाकर लौटा देना। तुम्हारे लिये दूसरा चंपक ले आऊँगा।

ललिता—[सरलता से] खाना तो तैयार है। मिठाई रक्खी हुई है। किसे खिलाऊँ? आप ही खा लीजिए।

किशोर—[ललिता के बाल सुधारते हुए] अब किसी दूसरे भूखे को आने दो, तब मैं भोजन करूँगा।

[धीरे-धीरे प्रस्थान। ललिता जैसे कुछ नहीं समझ सकती। वह किशोर को उदास देखकर अपना रोना भूल गई है। वह किशोर को शून्य नेत्रों से देखती हुई उसके पीछे-पीछे जाती है।]

ऐक्ट्रेस

पात्र-परिचय

प्रभा—पच्चीस वर्षीया सुंदर अभिनेत्री

किशोरी – प्रभा की सेविका

अनंगकुमार—'चारु चित्र' का संपादक

कमलकुमारी—अनंगकुमार की पत्नी

सेविका

ऐक्ट्रेस

[प्रभात का समय । वन-प्रदेश । विश्वप्रभा-सिनेटोन अपने नए चित्रपट 'रक्षा-बंधन' की शूटिंग करने जा रही है । प्राकृतिक दृश्यों का चित्र लेने के लिये यही सुंदर स्थान चुना गया है । एक सुंदर पहाड़ी है, जिसके निम्न प्रदेश में एक निर्झर सुमधुर ध्वनि से प्रवाहित हो रहा है । इसी पहाड़ी पर एक सुंदर तंबू तना हुआ है । उसमें प्रधान अभिनेत्री के ठहरने का प्रबंध है । उसी में एक सुसज्जित कमरा ; जिसमें अनेक स्थानों पर प्रमुख अभिनेत्रियों के चित्र । खिड़कियों और दरवाज़ों पर सुनहले परदे । मनुष्य के पूरे शरीर का प्रतिबिंब दिखलानेवाले तीन बड़े-बड़े शीशे । एक सम रूप से सामने है, और दो उसके बग़ल में । एक कोने में चमकती हुई टेबिल रक्खी है, जैसे उस पर अभी ही पॉलिश हुई हो । टेबिल पर एक बड़ा फूलदान है, जिसमें ताज़े फूल सजे हुए हैं । पास ही क़लमदान रक्खा हुआ है । पेपर-रैक में कुछ काग़ज़ और लिफ़ाफ़े, टेबिल के समीप चार कुर्सियाँ हैं, जिन पर मख़मली गद्दे सजे हुए हैं । कमरा बहुत ही सुंदर है । ज्ञात होता है, वह किसी निपुण चित्रकार की छवि-प्रसूता तूलिका से निर्मित एक स्पष्ट चित्र है ।

कमरे में पचीसवर्षीया एक सुंदर युवती । उसका नाम है प्रभा । सुंदर और सुडौल शरीर । रेशमी वस्त्र । माथे में कस्तूरी-बिंदु, जैसे ईश्वर ने यौवन को माथे ही में कील दिया है । बाल बिखरे हुए, जो उसके अरुण कपोलों को छूते हुए कुछ तो उभरे हुए वक्षःस्थल पर सिमट गए हैं, और शेष पीठ पर लहरा रहे हैं । नेत्रों में 'अमी-

हलाहल-मद'। सारी कुछ अस्त-व्यस्त हो गई है। वह शीशे के सामने खड़ी होकर अभिनय कर रही है।]

[दृढ़ता से]

मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकती। [ज़ोर से] तुम दानव हो। पिशाच हो। रूप और यौवन से ढके हुए पशु, एक हिंदू-नारी पर यह अत्याचार! वहीं खड़े रहो! एक क़दम भी ······ [अस्थिर होकर] आह:, दौड़ो, मदन! [रुककर, स्वगत] नहीं, मदन ज़रा और करुण स्वर में होना चाहिए। [करुण स्वर से] म...द..ा...न। [शीशे के समीप जाकर, भाव-भंगिमा से] म...द....ा ..न।

[किशोरी का प्रवेश। आयु २२ वर्ष, साधारणतः सुंदर। भाव-मुद्रा से ज्ञात होता है कि वह आवश्यकता से अधिक गंभीर है। वह प्रभा की सेविका है।]

किशोरी—श्रीमतीजी, आप कितनी देर और अभ्यास करेंगी? जल-पान का समय तो हो गया।

प्रभा—[चौंककर, रुक्षता से] किशोरी?

किशोरी—श्रीमतीजी।

प्रभा—[रूखे स्वर से] इस समय तुम्हारा आना अच्छा नहीं हुआ।

[कुर्सी पर बैठ जाती है।]

किशोरी—[नम्रता से] मैं क्षमा चाहती हूँ। श्रीमतीजी, कल रात आपने कुछ खाना नहीं खाया। दो बजे रात तक जागती रहीं। सुबह से फिर आप अपने अभ्यास में लग गईं। जब तक आप ठीक तरह से भोजन नहीं करेंगी, तब तक···।

प्रभा—[बीच ही में] अगर मुझे भूख न हो, तो?

किशोरी—आपको भूख न-जाने क्यों नहीं लगती? नाम-मात्र को भोजन करती हैं। मैं तो तीन वर्ष से यही देखती आ रही हूँ। श्रीमतीजी से कारण पूछने का साहस भी नहीं हुआ।

प्रभा – किशोरी, मुझे भूख नहीं लगती। क्या कारण बतलाऊँ? समझ लो, मैं अपनी भूमिका में अपने प्राणों को डालकर अपने को भूल जाना चाहती हूँ। मैं अपने अभ्यास में अपने अस्तित्व को घुला देना चाहती हूँ। शरीर को मन में सन्निहित कर देना चाहती हूँ।

किशोरी—[गर्व से] इसमें कोई संदेह हो नहीं सकता कि आपके अभिनय में जीवन जैसे झरने की तरह फूट पड़ता है। आपकी वाणी में प्राणों की गहराई छिपी हुई है। वीणा-झनकार-सी अनंत स्वर-लहरी कितने माधुर्य से गूँजती है! आपकी भाव-भंगी में जैसे मूक विचार तड़प रहे हैं। स्वाभाविकता और सौंदर्य जहाँ अपनी एक ही परिभाषा पाते हैं।

प्रभा—[मुस्कुराकर] भाषण तो अच्छा दे सकती हो किशोरी! शुद्ध हिंदी। तुम छायावाद की कवयित्री बन सकती हो।

किशोरी—आप हँसी समझती हैं, पर वास्तव में मैं सच कह रही हूँ। हिंदी-सिनेमा-संसार में आप ही की विजय-श्री मुस्कुरा रही है। आपके अभिनय की प्रशंसा से कितने पत्रों के पृष्ठ सजाए जाते हैं! कितने पात्र आपके साथ अभिनय करने को उत्सुक हैं!

प्रभा—[व्यंग्य से] सचमुच?

किशोरी—[गंभीरता से] 'चारु चित्र' में प्रकाशित हुआ है कि 'मेरे प्रियतम' नाम के फ़िल्म में आपकी भूमिका ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत में भी हिंदी के अच्छे चित्रपट बन सकते हैं, जिनकी समानता पश्चिम के अच्छे चित्रपटों से की जा सकती है। उस चित्र में न तो चुंबन ही है, और न आलिंगन ही। पर प्रेम की कितनी सजीव मूर्ति है! युवकों के सामने देश-प्रेम और शक्ति का आदर्श है, और युवतियों के सामने साहस और सच्चे प्रेम का।

प्रभा—[किशोरी के स्वर को दुहराते हुए] युवकों के सामने

देश-प्रेम और शक्ति का आदर्श है, और युवतियों के सामने साहस और सच्चे प्रेम का।

किशोरी—आप तो यहाँ भी अभिनय करने लगीं। पर सचमुच 'चारु चित्र' ने लिखा है कि श्रीमती प्रभा के अभिनय की उत्कृष्टता से उनके साथ अभिनय करनेवाले ने स्थायी कीर्ति प्राप्त कर ली है।

प्रभा—[हँसते हुए] हिंदी के संपादकजी जो चाहे लिख सकते हैं। संपादकजी ही तो हैं।

किशोरी—अच्छा, तो थोड़ा-सा जल-पान। लाऊँ? यहीं पर?

प्रभा—मैंने प्रण कर लिया है कि जब तक मैं अपनी भूमिका के सबसे कठिन भाग का सफलता-पूर्वक अभिनय न कर लूँगी, तब तक जल-पान भी न करूँगी।

किशोरी—कौन-सा कठिन भाग?

प्रभा—वही—'मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकती... .....।'

किशोरी—[प्रभा का मनोरंजन करने के लिये] मैं प्यार के योग्य भी तो नहीं हूँ।

प्रभा—[हँसकर] पगली, मैं अपनी भूमिका के विषय में कह रही हूँ।

किशोरी—अच्छा, कीजिए, मैं देखूँ।

प्रभा—देखोगी? अच्छा, अपनी निष्पक्ष सम्मति देना।

किशोरी—अवश्य।

प्रभा—देखो। [कुर्सी से उठकर, अभिनय करती हुई]

मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकती। [ज़ोर से] तुम दानव हो, पिशाच हो। रूप और यौवन से ठगे हुए पशु, एक हिंदू-नारी पर यह अत्याचार! वहीं खड़े रहो! एक क़दम भी..... [अस्थिर होकर] आह:, दौड़ो, म...द...ा...न, म...द...ा...न।

किशोरी—[उमंग से] वाह! बहुत सुंदर। क्रोध और करुणा का इतना सुंदर मिलाप! आप मदन किस प्रकार कातर होकर पुकारती

हैं। एक पत्थर से ठोकर खाकर जैसे जल विचलित हो उठा है। आँखें इस तरह झुक जाती हैं, जैसे उषा में रँगी हुई पानी की लहर।

प्रभा—[मुस्कुराकर] सचमुच ?

किशोरी—मेरे कथन को प्रमाणित करने के लिये ये शीशे मौजूद हैं। आप अपने अभ्यास में पूर्ण सफल हुईं। अब थोड़ा-सा जल-पान कर लीजिए। फिर बारह बजे से रिहर्सल और शूटिंग है।

प्रभा—कहाँ ? इसी जगह पहाड़ी के नीचे ?

किशोरी—हाँ। इसी स्थान पर।

प्रभा—किशोरी, सच मानो, कितनी मोहक जगह है यह ! कैसी सुंदर पहाड़ी है ! ज्ञात होता है, मानो वन-श्री ने अपने यौवन-रस से सींच-सींचकर वृक्षों को बड़ा किया है। एक-एक फूल अपने अंग में एक-एक काश्मीर को समेटकर बैठा है। लताओं के कुंज कितने सुंदर हैं। श्रीकृष्ण होते, तो एक बार उन कुंजों में बैठकर अपनी योगमाया-सी मुरली अवश्य बजाते।

[किशोरी प्रशंसात्मक दृष्टि से प्रभा को देख रही है।]

प्रभा—[उसी स्वर में] और वह निर्झर ! बीस फ़ीट से नीचे गिर रहा है। शायद यह बतलाने के लिये कि सौंदर्य का भी पतन होता है। जल-जैसी कोमल वस्तु को भी संसार के संघर्ष का अनुभव करना पड़ता है। झरने का नाम क्या है किशोरी ? मंदार ?

किशोरी—हाँ, मंदार।

प्रभा—और किशोरी, जब मंदार का जल पत्थर के नीचे से, उमड़कर बढ़ता है, तो ऐसा मालूम होता है, जैसे पानी में से दूध की धारा निकल रही है।

किशोरी—सचमुच इतना सुंदर दृश्य तो मैंने कहीं नहीं देखा।

प्रभा—और किशोरी, यदि अभिनय करते-करते मैं उसी में डूब जाऊँ, तो तुम क्या करो ? [हास्य]

किशोरी—श्रीमतीजी, आप कैसी बातें करती हैं !

प्रभा—सच मानो किशोरी ! वह इतनी सुंदर जगह है कि वहाँ मरने में भी आनंद मिलेगा। निर्झर की धारा इतनी निर्मल है कि उसमें डूबना भी गौरव की बात है।

किशोरी—[हँसकर] वाह श्रीमतीजी !

[एक सेविका का प्रवेश। आकर एक विज़िटिंग कार्ड देती है।]

प्रभा—[विज़िटिंग कार्ड की ओर देखती हुई] कौन है ? [कार्ड देखकर] 'चारु चित्र' के संपादक सपत्नीक ?

किशोरी—अच्छा, उसी सिनेमा-पत्र के संपादक। कैसे आए ?

प्रभा—शायद इंटरव्यू के लिये आए होंगे। आजकल यह तो संपादकों का एक रोग-सा हो गया है।

किशोरी—तो मैं उन्हें बाहर ठहरने के लिये कह दूँ। इस बीच में आप जल-पान कर लें।

प्रभा—नहीं, जल-पान की ऐसी कोई जल्दी नहीं है। इन लोगों से मिल लूँ, फिर जल-पान की बात सोचूँगी।

किशोरी—[उदास होकर] आप न-जाने क्यों इतनी विपन्न-सी रहती हैं।

प्रभा—[सेविका की ओर देखकर] भेज दे उन्हें।

[सेविका का प्रस्थान। प्रभा कुर्सी पर बैठ जाती है।]

प्रभा—[पिछली बातों को सोचती हुई] किशोरी, मैं इस जीवन से न-जाने क्यों ऊब-सी गई हूँ। इस दैनिक हँसी के भीतर एक करुणा सिसक रही है, जो मुझे अज्ञात प्रदेश में बुला रही है। उस करुणा पर शायद अपने जीवन में किसी समय भी विजय प्राप्त न कर सकूँगी।

[किशोरी विषाद-मुद्रा से प्रभा की ओर देखती है। एक संभ्रांत दंपति का प्रवेश। पुरुष की आयु छब्बीस वर्ष की है। वह

स्वच्छ वस्त्रों से सुसज्जित है। अँगरेज़ी वेष-भूषा। हाथ में सोने की घड़ी। उँगली में बहुमूल्य रत्न की अँगूठी। ऐसा ज्ञात होता है कि वह एक बड़ी संपत्ति का स्वामी है। उसका नाम है अनंगकुमार।

स्त्री की आयु अठारह वर्ष की। वह यथेष्ट सुंदर है। उसके उज्ज्वल शरीर पर नीली सारी। शरीर पर कम, किंतु बहुमूल्य आभूषण। माथे में लाल बिंदु। उसी के समीप तिलक के रूप में एक छोटा-सा चिह्न। परस्पर अभिवादन।]

अनंग०—आप ही श्रीमती प्रभा हैं ?

प्रभा—[मुस्कान के साथ सिर हिलाकर स्वीकृति देते हुए] जी हाँ।

कमल०—आपके दर्शनों से मुझे विशेष प्रसन्नता हुई।

प्रभा—धन्यवाद। बैठिए।

[दोनों समीप की कुर्सियों पर बैठते हैं।]

अनंग०—क्षमा कीजिए। हम लोगों ने आपके कार्यों में बाधा तो नहीं पहुँचाई ?

प्रभा—[अनंग को देखकर उद्विग्न होकर] नहीं तो, मैं स्वयं एकाकीपन से ऊब रही थी। आपका आना मुझे सुखी ही कर रहा है।

अनंग०—मैं आपको अपना पूरा परिचय दे दूँ। मैं 'चारुचित्र' का संपादक हूँ। मेरा नाम है अनंगकुमार वर्मा। यह मेरी पत्नी हैं। इनका नाम है कमलकुमारी। मैं आपका चित्र और इंटरव्यू लेने के लिये आया हूँ। आपकी कीर्ति तो भारत ही में नहीं, विदेशों में भी व्याप्त हो गई है। मैं स्वयं यह प्रार्थना करने आया हूँ कि हमारे पत्र पर आपकी विशेष कृपा रहे।

प्रभा—[उदास होकर] मैं तो केवल एक साधारण अभिनेत्री हूँ।

अनंग०—साधारण अभिनेत्री ? आप क्या कह रही हैं ? आप कितने हृदयों की एकमात्र सम्राज्ञी हैं।

कमल०—मैंने जितने चित्रपट देखे हैं, उनमें सर्वोत्तम आप ही के हैं। मैं आपके दर्शनों का लोभ न रोक सकी। अतएव मैं भी इनके साथ चली आई।

प्रभा—धन्यवाद।

[किशोरी मुस्कुराती है।]

अनंग०—आप कृपया अपना जीवन-विवरण दे दें, तो कृपा होगी।

प्रभा—क्षमा कीजिए। मैं किसी को अपना जीवन-विवरण नहीं देना चाहती। [सोचकर] बहुतों ने मुझसे इसी प्रकार प्रश्न किए, पर मैंने इस प्रश्न पर सबको एक-से उत्तर दिए। मैं अपने तुच्छ जीवन का चित्र किसी के सामने रखने में असमर्थ हूँ।

अनंग०—क्यों ?

प्रभा—मेरी इच्छा।

अनंग०—यदि मैं विनय करूँ ?

कमल०—यदि मैं प्रार्थना करूँ ?

प्रभा—असंभव। एकमात्र असंभव।

अनंग०—तो मैं निराश ही लौट जाऊँ ?

प्रभा—[नीची दृष्टि कर] मैं विवश हूँ।

अनंग०—इस इंटरव्यू के लिये आपका पुरस्कार १००० है। मुझे यह गौरव मिलने दीजिए कि जिस प्रभा का परिचय अभी तक कोई संपादक पाने में समर्थ न हो सका, उसी को 'चारुचित्र' के संपादक ने विस्तृत रूप में पा लिया। इस इंटरव्यू के लिये आपका पुरस्कार १००० है।

प्रभा—[शांति से] कमलजी के लिये उतने मूल्य का एक नया आभूषण ला दीजिए।

अनंग०—मैं निराश तो नहीं हो सकता। मैं कुछ-न-कुछ सामग्री तो लेकर ही जाऊँगा। आप न बतलाएँगी, तो मैं डाइरेक्टर से पूछूँगा।

प्रभा—आप पूछने के लिये स्वतंत्र हैं।

अनंग०—[किशोरी से] डाइरेक्टर साहब कहाँ हैं ?

किशोरी—अपने टेंट में।

अनंग०—यहाँ से कितनी दूर है ?

किशोरी—कम-से-कम आधा मील।

अनंग०—इस समय मिल सकेंगे ?

किशोरी—हाँ, इस समय तो मिल सकते हैं। पर दो घंटे के बाद वे अपने स्थान से चले जायँगे। आज बारह बजे से रिहर्सल है। दस बज रहे हैं।

अनंग०—[कमल से] तो कमलाजी, आप यहाँ रुकिए। मैं जल्दी ही आता हूँ। सब काम मैं आज ही समाप्त कर लेना चाहता हूँ, क्योंकि आज ही शाम की गाड़ी से हम लोगों को चले जाना है।

कमल०—मैं भी चलूँ ?

अनंग०—इस अज्ञात स्थान में आपको यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ बार-बार आने में कष्ट ही होगा। फिर हम लोगों का परिचित भी कोई नहीं है, जिसकी कार पर मैं आपको आराम से सभी स्थानों में ले चलूँ।

प्रभा—[बीच ही में] मैं अपनी कार मँगवा दूँ ? [रहस्यमय नीची दृष्टि]

अनंग०—धन्यवाद। कष्ट ही होगा।

प्रभा—नहीं, कष्ट कुछ नहीं। [किशोरी की ओर] किशोरी !

अनंग०—रहने दीजिए। मैं अभी बीस मिनट में आया, तब तक [कमल से] आप प्रभाजी के स्थान पर ही ठहरिए। [प्रभा से] आपको आपत्ति तो न होगी ?

प्रभा—मुझे क्या आपत्ति ? आप प्रसन्नता-पूर्वक रुक सकती हैं।

अनंग०—धन्यवाद। [प्रस्थान।]

प्रभा—[कमल को कुछ क्षण मौन देखकर] आपको आने में कष्ट तो नहीं हुआ ?

कमल०—कष्ट ? जिनके दर्शनों के लिये न-जाने कितने दिनों से लालसा थी, उनसे मिलने पर कष्ट ? यह पूछिए, आनंद कितना हुआ। आपके दर्शन पाने के लिये न-जाने कितने स्थानों पर हमें जाना पड़ा। पहले तो हम लोग आपके स्थान पर गए दादर, बंबई। वहाँ मालूम हुआ, आप लोग 'रक्षा-बंधन'-नामक नए चित्रपट के शूटिंग के लिये रीवाँ के गोविंदगढ़-स्थान पर गई हैं। शायद कुछ पहाड़ी दृश्य और झील के तट के दृश्य लेने हैं। गोविंदगढ़ आने पर पता ही नहीं चलता था कि आप सब किस दिशा में गए हैं। कठिनता से आपके डेरे नज़र आए। जैसे किसी भक्त को भगवान् की उपासना में अनेक जगह भटकना पड़ता है, अंत में भगवान् के दर्शन हो ही जाते हैं।

प्रभा—[मुस्कुराकर] आप मुझे बहुत लज्जित न कीजिए। आपको यहाँ आने में वास्तव में बड़ा कष्ट हुआ।

कमल०—कष्ट ? कहाँ हुआ ? रास्ते-भर प्रकृति के इतने दृश्य देखे, जो हम लोगों को स्वप्न में भी देखने को न मिलते। हम लोग रहते हैं तो जैसे प्रकृति से बहुत दूर। यहाँ एक-एक क़दम पर पहाड़ी है। इतने ऊँचे पेड़ हैं, जैसे उन्हें किसी का डर ही नहीं है। बढ़ते चले जाते हैं। छोटी-छोटी झाड़ियाँ तो इतनी देखने में आईं कि हिसाब ही नहीं। वे सर्वव्यापी हैं, जैसे हमारे यहाँ शहरों में धूल।

प्रभा—वाह, आप बड़ी हास्य-प्रिय हैं।

कमल०—सच मानिए, रास्ते-भर प्राकृतिक दृश्यों से हमारा मनोरंजन होता रहा। इच्छा होती है कि हम लोग भी ऐसे स्थान पर रहें। न-जाने कहाँ-कहाँ से फूल निकलकर कहते हैं, लो, हमें देखो। वन के पेड़ों की स्वाभाविक, भीनी-भीनी सुगंधि तो जैसे नदी की तरह

बहती रहती है। अजीब तरह के पेड़ नज़र आए। कोई टेढ़ा है, तो कोई लंबा, कोई बुड्ढे की तरह झुका हुआ है। किसी की शाखें ऐसी चारों ओर फैल गई हैं कि वह छोटी-छोटी झाड़ियों को हँसाने के लिये अपने हाथ फैलाकर नाचना ही चाहता है। सच मानिए, रास्ते-भर बड़ा आनंद रहा। हम लोग किसी ऊँचे पेड़ की तारीफ़ करते, कभी किसी अष्टावक्र पेड़ को देखकर हँसते, कभी परिंदों की मनभावनी बोली सुनते। ओह, ऐसे दृश्य हम लोगों को शहरों में कहाँ नसीब होते हैं! तबियत होती है, अपना घर छोड़कर यहीं एक झोपड़ी डाल लें। आलीशान बँगले इतना सुख नहीं दे सकते, जितना सुबह की हिलकोरें लेती हुई मस्तानी हवा। यदि किसी तरह यहाँ आने का संयोग न मिले, तो [मुस्कान के साथ] अभिनेत्री ही बनने का प्रयत्न किया जाय।

[प्रभा किसी बात के सोचने में लीन है। वह जैसे कमल की बातें सुन ही नहीं सकी है। कमल कहती जाती है।]

कमल०—आप क्या सोच रही हैं?

प्रभा—कुछ नहीं।

कमल०—मालूम तो ऐसा होता है, आप किसी समस्या के सुलझाने में लगी हुई हैं।

प्रभा—समस्या क्या, जीवन में तो सोचना-ही-सोचना है। मन ही तो है, स्थिरता कहाँ मिलती है?

कमल०—मैं समझी, शायद किसी फ़िल्म का कथानक सोच रही हैं।

प्रभा—जीवन पर ही सोचने के लिये काफ़ी सामग्री है। फिर आपके समीप तो फ़िल्म का कोई महत्त्व ही नहीं।

कमल०—क्यों?

प्रभा—[मुस्कुराकर] आप सजीव फ़िल्म हैं। अपने नायक के साथ हैं।

कमल०—[हँसकर] आप हँसी करना भी जानती हैं। इतने गुणों के साथ संयुक्त होने के कारण ही तो आप अमर होने जा रही हैं।

प्रभा—अगर अमर ही होगा, तो मेरा अभिनेत्री-रूप। मैं इसमें अपना अमरत्व नहीं मानती। मेरा आंतरिक जीवन इस बाह्य जीवन से बिलकुल ही भिन्न है। इस जीवन से मुझे मानसिक तुष्टि नहीं मिल सकती। ओह, मेरे इस रूप में भी कितनी विडंबना है।

कमल०—[आश्चर्य से] क्यों?

प्रभा—[सँभलकर] कुछ नहीं। [स्वगत] मैं क्या कह गई? [बात बदलने के विचार से] आपका निवास-स्थान कहाँ है?

कमल०—नागपुर।

प्रभा—ना''''ग'''पु'''र? [कौतूहल-जनक जिज्ञासा]

कमल०—क्यों, आप अस्थिर क्यों हो उठीं?

प्रभा—कुछ नहीं। न-जाने क्यों आपसे मेरा इतना अनुराग बढ़ता जा रहा है। आप जानती हैं, मेरे पास समय की कितनी कमी है। मुझे स्टूडियो के कितने काम करने पड़ते हैं। मैं अन्य किसी व्यक्ति को मिलने के लिये पाँच मिनट से अधिक का समय नहीं देती। पर न-जाने आपके पास मुझे इतना आनंद क्यों मिल रहा है?

कमल०—यह आपकी कृपा।

किशोरी—[बीच ही में धीरे से] श्रीमतीजी, भोजन.........।

प्रभा—[नाराज़ होकर] जाओ किशोरी, मुझे तंग मत करो। मुझे इस समय कुछ ज़रूरत नहीं।

[किशोरी का चुपचाप प्रस्थान।]

कमल०—श्रीमती, आप जाइए, भोजन कर लीजिए।

प्रभा—आपसे मिलकर मेरी भूख-प्यास सब जाती रही। मुझे किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं। कहिए, आपके लिये कुछ मँगवाऊँ? देखिए, परिश्रम से आपके माथे पर पसीने की बूँदें आ रही हैं।

कमल०—नहीं, मुझे किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं। और, अब तो वे आते ही होंगे। कहेंगे, एक मिनट में यह रंग!

प्रभा—वे भी आपके जल-पान में शरीक हो जायँगे। क्या हानि है। अब ही तो है मिल गया आपसे। चुंबक तो एक सेकंड में लोहे को अपनी ओर खींच लेता है। मुझे तो आपकी ओर आकृष्ट होने में देर लगी। एक मिनट तो बहुत है। मालूम होता है, मैं लोहे से भी गई-बीती हूँ।

कमल०—नहीं, आप एक मणि हैं, जिससे प्रभा सदैव फूटा करती है। [मुस्कान]

प्रभा—[हँसकर] खूब, फिर कहिए आपके लिये क्या मँगवाऊँ?

कमल०—श्रीमतीजी, कुछ नहीं। यदि कुछ आवश्यकता होती, तो मैं स्वयं आपसे निवेदन करती। धन्यवाद।

प्रभा—तो यह पसीना तो माथे से पोंछ डालिए। आपके कुंकुम-बिंदु की शोभा बिगाड़ रहा है। अच्छा, यह कुंकुम के पास घाव का निशान कैसा है? [तीव्र दृष्टि]

कमल०—[पसीना पोंछते हुए] कुछ नहीं, यों ही चोट लग गई थी।

प्रभा—कैसे?

कमल०—[सोचकर] यह जानकर क्या करेंगी?

प्रभा—इच्छा ही तो है।

कमल०—मैं जब नागपुर में थी, तो मेरे पतिदेव एक बड़े भारी बैंकर थे। इंपीरियल बैंक से उनका बड़ा व्यवहार रहता था। अब तो उन्होंने वह कारबार छोड़ ही दिया है—एक महान् घटना के कारण। हाँ, तो बैंक के एजेंट मिस्टर खन्ना पास ही के मकान में रहा करते थे।

प्रभा—[हँसकर] अच्छा !

कमल०—खन्ना जब-जब मेरे पति के यहाँ आया करते थे, घंटों बैठते थे। अविवाहित थे। घर पर कोई काम नहीं था।

प्रभा—..................।

कमल०—आपको शायद मालूम न होगा, मैं अपने पति के दूसरे विवाह की स्त्री हूँ। उनका जीवन पहले बड़ा विषमय था—कुरुचि-पूर्ण था। पत्नी के स्थान पर उनकी प्रेयसी थी मदिरा। विवाह के केवल एक महीने के भीतर ही उन्होंने अपनी पहली पत्नी का परित्याग कर दिया था।

प्रभा—[मुस्कुराकर] सचमुच, बड़े निष्ठुर थे !

कमल०—आप बड़ी हास्य-प्रिय हैं ? बात-बात पर मुस्कुराती हैं।

प्रभा—मैं अभिनेत्री हूँ।

कमल०—दूसरों की वेदना पर आप क्या अभिनेत्री का बहाना लेकर हँस सकती हैं ? किसी के आँसुओं पर आपकी यह मुस्कान ?

प्रभा—मैं संसार के दुखों को अब दुःख नहीं समझती। अच्छा, उन्होंने अपनी पहली पत्नी का परित्याग क्यों कर दिया कमलजी ?

कमल०—उनकी पत्नी का यही अपराध था कि वे अपने पति के मित्रों के सामने नहीं निकलना चाहती थीं। इसीलिये मिस्टर खन्ना के सामने भी वह कभी नहीं गईं। वे बहुत धर्माचरण करनेवाली थीं। अपने परिजनों के अतिरिक्त वे अन्य किसी से हँसी-मज़ाक़ करना पसंद नहीं करती थीं। पतिदेव आधुनिक रंग में रँगे हुए थे। वे उन्हें अपने क्लब ले जाना चाहते थे। उन्हें जैसे मालूम हुआ, यह पत्नी उनके जीवन की संगिनी नहीं बन सकती। इसी पर उन्होंने उनका परित्याग कर दिया। वे महीनों उन्हें दर्शन न देते थे।

इस पर पत्नी को बहुत दुःख हुआ। अंत में एक दिन वे कहीं न दिखाई पड़ीं। शायद उन्होंने आत्महत्या कर ली।

प्रभा—[आतंक से] आत्महत्या कर ली ?

कमल०—लोगों ने यही सोचा, उनके पिताजी तो थे ही नहीं। कुछ लोग दूर के संबंधी थे। उनके पास से भी कोई समाचार नहीं आया। वे लोग भी शांत होकर बैठ रहे।

प्रभा—[गहरी साँस लेकर] आह बेचारी पत्नी !

कमल०—कुछ दिनों बाद जब पति की उच्छृंखलता दूर हुई, तो वे अपनी पत्नी के गुणों का स्मरण कर बहुत दुखी रहने लगे। उन्होंने अपना सब कारबार बंद कर दिया। ऐसा ज्ञात होने लगा कि अब वे अधिक दिनों तक जीवित न रह सकेंगे। उनके पिताजी ने उनके शोक को दूर करने के लिये उनका दूसरा विवाह कर दिया।

प्रभा—उपाय तो अच्छा था। [मुस्कान]

कमल०—[प्रभा की मुस्कान को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए] मैं जब से आई हूँ, देखती हूँ, कभी-कभी वे अपनी पहली पत्नी के ध्यान में इतने डूब जाते हैं कि उन्हें अपने शरीर का ध्यान भी नहीं रहता। एक बार तो शोक के आवेग में एक बड़ा-सा पत्थर अपने सिर पर मारना चाहा। मैंने उन्हें बीच ही में रोक लिया। उनके माथे के बजाय वह पत्थर मेरे माथे में लगा। उसी का चिह्न आप मेरे कुंकुम-बिंदु के समीप देख रही हैं।

प्रभा—तो आप तो बड़ी पति-परायणा हैं। [मुस्कान]

कमल०—[लज्जित होकर] नहीं, पर मुझे भी अपनी प्रथम बहन का बड़ा शोक है। उनके दर्शन होना तो असंभव है।

प्रभा—उनका नाम क्या था ?

कमल०—नाम...... नाम था.................. ।

प्रभा—प्रभातकुमारी तो नहीं ?

कमल०—[आश्चर्य से] हाँ, यही था। आपको ये सब बातें कैसे मालूम हैं ?

प्रभा—मैं अंतर्यामिनी हूँ।

कमल०—[प्रभा की ओर ध्यान से देखती हुई] कहीं आप तो प्रभातकुमारी नहीं हैं ? घर पर मेरे पास सुरक्षित आपकी फ़ोटो से आपकी रूप-रेखा अब मुझे मिलती हुई जान पड़ती है। आप ही तो प्रभातकुमारीजी नहीं हैं ?

प्रभा—[नीची दृष्टि कर] यदि मैं वही अभागिनी होऊँ ?

कमल०—[आगे बढ़कर] बहन ! [गले से लगना चाहती है]

प्रभा—[अलग हटकर] श्रीमती कमलकुमारीजी, मैं उस पद से अब हट गई हूँ। उस महान् नारीत्व-गौरव से अलग हो गई हूँ। अब बहुत छोटी हो गई हूँ। प्रभातकुमारी से केवल प्रभा। गौरवशालिनी नारी से केवल एक नटी, अभिनेत्री। पर भावोन्माद में मैं यह क्या कर बैठी ! अपना परिचय········ ।

कमल०—[हर्षोद्वेग से] मेरी बहन, पर तुम अभिनेत्री······ ।

प्रभा—हाँ, मैं अभिनेत्री हूँ। जानती हो, प्रतिक्रिया किसे कहते हैं ? मेरे पतिदेव मेरे संयत आचरण पर मेरा तिरस्कार किया करते थे। उन्होंने बारह दिनों से मुझे दर्शन नहीं दिए थे। अँधेरी रात थी। मैं दुःख के मारे व्याकुल थी। बादलों की आँखों से भी आँसू गिर रहे थे। बिजली तड़प रही थी। पतिदेव रुष्ट थे कि मैं उनके योग्य नहीं थी। उनके साथ मैं—लज्जाशीला वधू—क्लब नहीं जा सकती थी। अन्य पुरुषों की आँखों से आँखें मिलाकर बात नहीं कर सकती थी। उन लोगों से हाथ नहीं मिला सकती थी, क्योंकि वे व्यभिचारी थे, शराबी थे। यही मेरा अक्षम्य अपराध था। मैंने मिस्टर खन्ना के पुकारने पर भी अपनी आँखें उस ओर नहीं कीं। इसलिये

कि मैं जानती थी कि उसका चरित्र ठीक नहीं था। इसी पर मेरे पति ने मेरा तिरस्कार किया। मैं पागल हो उठी। आत्मग्लानि से मैं घर से निकल पड़ी। अँधेरी रात थी। उसी प्रकार अँधेरा मेरा भाग्य था। पर मेरा चरित्र मेरे हाथ में था। वह मेरे पास सुरक्षित छुरी की नोक पर था। अंत में प्रतिक्रिया अपनी पूरी सीमा पर पहुँचकर रुकी। मेरे पतिदेव एक खन्ना के सामने निकलने के लिये आग्रह करते थे। यहाँ खन्ना के समान पचासों विलासी व्यक्ति देखते हैं कि मैं प्रेमावेश में अपनी भौंहों का संचालन किस प्रकार करती हूँ।

कमल०—आह, यह परिवर्तन !

प्रभा—महान् परिवर्तन ! पहले कहाँ मैं संसार के खुले हुए कौतुक के सामने दरवाज़े बंद कर अपनी लज्जा और संकोच ही में लिपटी रहती थी, पर अब हज़ारों उठी हुई मतवाली नज़रों के सामने मैं रूप की मदिरा लिए हुए जाती हूँ। भावावेश में न-जाने कितने हृदयों का संचालन केवल यौवन के बेसुध नैनों से किया करती हूँ। पर अभी तक स्वयं मैं वही हूँ, जो पहले थी !

कमल०—पर आश्चर्य है, पतिदेव ने आपको पहली ही दृष्टि में पहचाना नहीं ?

प्रभा—उन्होंने मुझे विवाहित अवस्था ही में ठीक तरह से कहीं देखा था ? क्षणिक मिलन, वह भी उस समय, जब मदिरा से उनकी आँखें झूमती रहती थीं। दो-चार कर्कश शब्दों के बाद उनका एक सप्ताह के लिये वियोग ! यह था मेरा जीवन !

कमल०—इस समय तो शायद आपके फ़ोटो की स्मृति से आपको वे पहचान लेते।

प्रभा—संभवतः। मैं तो उन्हें देखते ही पहचान गई। मैंने यथा-शक्ति प्रयत्न किया कि अपनी आँखें नीचे रक्खूँ, और जितने शीघ्र हो, उन्हें यहाँ से बिदा कर दूँ। इसीलिये मैंने उनके प्रश्नों के कितने

रूखे उत्तर दिए ! अच्छा हुआ, वे स्वयं शीघ्र ही उठकर चले गए, नहीं तो शायद ये मेरा परिचय पा लेते। मैं डर रही थी कि कहीं मेरे प्रेम की आग भड़क न उठे। वास्तव में मुझसे बड़ी भारी भूल हो गई। अनायास ही मेरे मुख से तीन वर्षों से बड़ी कठिनता से वश में की हुई वेदना निकल पड़ी। आह, कहाँ तक रोकती !

कमल०—आपके हृदय में ही वेदना नहीं थी। पतिदेव के हृदय में शायद उससे तीव्रतर वेदना होगी। आपके जाने के बाद ही उनके जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। उन्होंने पश्चात्ताप की अग्नि में अपनी सारी वासनाओं को जला दिया। अपने साथियों का तिरस्कार कर उन्होंने मदिरा की सारी बोतलों को ज़मीन पर दे मारा। लाल-लाल मदिरा बह गई, जैसे पत्थर पर उसका ख़ून हो गया।

प्रभा—तब मेरे चले जाने का परिणाम अच्छा ही हुआ। उनके जीवन में सुधार हो गया !

कमल०—इसमें कोई संदेह नहीं, पर अब परिचय का परिणाम क्या होगा ?

प्रभा—कुछ नहीं। आप इस विषय में मौन रहें। किसी को यह सूचना ही क्यों हो कि प्रभा ही प्रभातकुमारी है ?

कमल०—यह असंभव है। श्रीमती प्रभाजी, अब आप यह समझ लीजिए कि यहाँ आप रह न सकेंगी। पतिदेव प्रत्येक परिस्थिति में आपको यहाँ से ले जायँगे।

प्रभा—[हँसकर] मेरा और आपका, दोनों का भविष्य मैला करने के लिये ?

कमल०—मुझे अपने भविष्य की चिंता नहीं है।

प्रभा—मुझे तो आपके भविष्य की चिंता है। प्रभा अब कहीं नहीं जा सकती।

कमल०—यह तो असंभव है।

प्रभा—मैं नहीं जाऊँगी।

कमल०—वे किसी प्रकार भी नहीं मान सकेंगे।

प्रभा—तो मैंने अपना परिचय देकर वास्तव में बड़ी भारी भूल की। पर मैंने अपना परिचय कहाँ दिया, तुम्हीं ने सब कुछ मुझसे कहला लिया। फिर वेदना कहाँ तक छिप सकती है? बहन, मुझे क्षमा करो। यह बात किसी से मत कहो।

कमल०—श्रीमती प्रभाजी, यह असंभव है। मैं अपनी बहन को नहीं छोड़ सकती। आपको चलना पड़ेगा।

प्रभा—मैं जा ही नहीं सकती।

कमल०—यदि आप न जायँगी, तो आपने तो नहीं की, वे अवश्य ही आत्महत्या कर लेंगे।

प्रभा—अब वे आत्महत्या क्यों करें। मैं उन्हीं के आदेश का पालन तो कर रही हूँ। खेला का तो कहना ही क्या, बहुतों के सामने अपने नृत्य के साथ निकलती हूँ।

कमल०—अब आपके वे पुराने पतिदेव नहीं रहे। अब तो वे आपके उपासक हैं।

प्रभा—इसीलिये तो मैं नहीं जाना चाहती। यदि वे मुझे पा जायँगे, तो आपका ध्यान ही उन्हें न रह जायगा, क्योंकि मैं जानती हूँ कि पश्चात्ताप की प्रतिक्रिया भी उतनी ही वेगवती होगी। जितना पहले वे मेरा तिरस्कार करते थे, अब उतना ही अधिक मुझे प्यार करेंगे। इसीलिये मैं आपके सुख में बाधा पहुँचाने के लिये नहीं जा सकती। मैं आपके भविष्य को मैला नहीं कर सकती।

कमल०—तो तुम यह क्यों नहीं कहतीं कि तुम अपने भविष्य को मैला करने के लिये यहाँ से नहीं जाना चाहतीं।

प्रभा—कमलजी, क्या आप जानती हैं कि मैं सुखी हूँ? धन

चरणों पर लोट रहा है, पर मेरा मन ? वह भी चाहता है कि अपने आत्मीय के चरणों पर लोट जावे। धन और वैभव हृदय की प्यास नहीं बुझा सकते। उसके लिये आवश्यकता है निर्धन प्रेम की। मैं गत तीन वर्षों से प्रेम का अभिनय कर रही हूँ, पर वह केवल अभिनय-मात्र है। कितने व्यक्ति मेरी प्रेम-भरी मुस्कान के उपासक हैं। पर मैं उन्हें उसी प्रकार देखती हूँ, जैसे एक तपस्वी मदिरा पीने-वाले को देखता है। अपने साथवाले पात्र फ़िल्म में ही मेरे प्रेममय वाक्य सुनते हैं, पर वे वाक्य काग़ज़ के फूल की तरह हैं। रूप तो फूल ही की तरह है, पर उनमें प्रेम की सुगंधि नहीं है। अपने झूठे प्रेमी नायक का नाम भी मैं वही रखती हूँ, जो मेरे पतिदेव का पर्यायवाची नाम है। उनका स्पष्ट नाम तो मैं ले नहीं सकती। उसी से मुझे कुछ शांति मिल जाती है। यदि विश्वास न मानो, तो मेरी सेविका किशोरी से पूछ देखो। इतने पर भी फ़िल्म में मैं अपने प्रेमी नायक को दूर ही से प्रेम करने देती हूँ। आलिंगन और चुंबन मेरे अभिनय के क्षेत्र से बाहर है।

कमल०—[विमूढ़ के समान] तो मेरे लिये आप क्या कहती हैं ?

प्रभा—मेरा रहस्य किसी पर भी प्रकट न होने पावे।

कमल०—देवीजी, मैं अपने हृदय को नहीं रोक सकती। आपको अपनी बहन के रूप में पाकर मैं फूली नहीं समा रही हूँ। मैं भी यहाँ से नहीं जा सकती। मैं भी आपके साथ रहूँगी। मैं निस्संदेह देख रही हूँ कि आपकी परिस्थिति बहुत विषम हो रही है।

प्रभा—[किसी गहरे भाव में लीन हो जाती है।]

कमल०—[अपने ही विचारों में] यदि आप न जायँगी, तो पतिदेव को मरणांतक वेदना होगी। और, उन्हें मेरे यहाँ से न

जाने के कारण किसी-न-किसी प्रकार यह विदित हो ही जायगा कि आप श्रीमती प्रभातकुमारी हैं। अब मैं आपकी उपासिका हूँ।

प्रभा—[गंभीरता से] अच्छा, तो मैं चलने के लिये तैयार हूँ, पर इसके पहले मेरा एक पत्र उन्हें दे दो, जिससे मैं अपनी परिस्थिति ठीक तरह समझा सकूँ। जब तक मैं पत्र लिखती हूँ, आप मेरे अभिनय के चित्रों को देखिए।

[प्रभा कमल के हाथ में अपने चित्रों का अलबम देती है, और स्वयं एक पत्र लिखने में लीन हो जाती है। कमल बड़े ध्यान से अलबम देख रही है। कुछ क्षणों के बाद प्रभा पत्र लिखकर लिफ़ाफ़े में रखती है, उसे गोंद से चिपकाती है।]

प्रभा—[हँसकर] बहुत अच्छी इंटरव्यू आपने मुझसे की! अच्छा, यह पत्र आप उन्हीं के हाथ में दीजिए। मैं अभी जल-पान करके आती हूँ। [पत्र देती है।]

[प्रस्थान। कमल चित्र-संग्रह देखती रहती है। कुछ देर बाद किशोरी का प्रवेश।]

किशोरी—श्रीमतीजी, [प्रभा को न देखकर] अरे, श्रीमतीजी कहाँ हैं?

कमल०—जल-पान करने गई हैं।

किशोरी—मैं ही तो उनका जल-पान लिए बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रही हूँ।

कमल०—वे तो मुझसे यही कहकर गई हैं।

किशोरी—मेरे समीप तो नहीं पहुँचीं।

कमल०—शायद स्नानागार में गई हों!

किशोरी—स्नानागार में जाने की कोई आवश्यकता तो नहीं थी? वे स्नान तो प्रातःकाल ही कर लेती हैं।

कमल०—और क्यों किशोरी, जानती हो, तुम्हारी प्रभाजी कौन हैं ?

किशोरी—मैं तो नहीं जानती।

कमल०—जानना चाहती हो ?

किशोरी—बड़ी कृपा होगी, यदि आप बतला देंगी।

कमल०—मैं चित्रपट-संसार को एक नया संदेश दूँगी।

किशोरी—वह कौन-सा ?

कमल०—जिससे बड़े-से-बड़े फ़िल्म-निर्माता को आश्चर्य में डूब जाना पड़ेगा।

किशोरी—वह कौन-सा संदेश ?

कमल०—ठहरो, उसके लिये अभी समय नहीं है। पर यदि तुम उसे गुप्त रखने का वचन दो, तो मैं तुम्हें बतला सकती हूँ।

किशोरी—अवश्य।

कमल०—अच्छा, तो सुनो। तुम्हारी यह भारत की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री........।

[सेविका का प्रवेश।]

सेविका—[किशोरी से] श्रीमतीजी कहाँ हैं ?

किशोरी—कहीं बाहर गई हैं। क्या है ?

सेविका—अनंगकुमारजी आए हुए हैं।

कमल०—भेज दीजिए उन्हें।

[सेविका का प्रस्थान।]

किशोरी—हाँ, बतलाइए अपना संदेश।

कमल०—मैं बतलाती हूँ, पर प्रभाजी की आज्ञा ले लूँ। वे मेरे हाथ में एक पत्र दे गई हैं। मैंने उन्हें वचन दिया है कि मैं उनका रहस्य बिना उनकी आज्ञा के किसी से भी न कहूँगी।

किशोरी—आश्चर्य है। वे अकेली ही न-जाने कहाँ चली गईं। जब वे कहीं बाहर जाती थीं, मुझे अवश्य ही अपने साथ ले लेती थीं। वे कम-से-कम मुझसे कहकर तो जातीं।

[अनंगकुमार का प्रवेश।]

अनंग०—कहाँ हैं श्रीमतीजी ?

कमल०—कहीं बाहर गई हैं, अभी आती हैं। कहिए, डाइरेक्टर साहब से मिले ?

अनंग०—हाँ, मिला ज़रूर। पर वे भी प्रभाजी का परिचय नहीं जानते।

कमल०—[गर्व से] मैं जानती हूँ।

अनंग०—[उत्सुकता से] क्या ?

कमल०—क्या देंगे आप मुझे ?

अनंग०—जो माँगो।

कमल०—अच्छा, पहले यह पत्र लीजिए। वे आपके नाम दे गई हैं। जब आप उन्हें पूरी तरह समझ जायँगे, तब शायद वे आपसे मिलेंगी। इसीलिये शायद वे कहीं बाहर चली गई हैं। पुरुषों के सामने स्त्रियाँ अपने हृदय का रहस्य खोलकर नहीं रख सकतीं। मैंने थोड़ी देर ही में उनके हृदय का सारा रहस्य उनसे समझ लिया। मेरी प्रशंसा कीजिए कि बातों के प्रवाह में ही मैं जान गई कि वे···।

[अनंग पत्र खोलकर पढ़ता है।]

कौन है। अभी बात करने का रहस्य बहुत दिनों तक पुरुषों को स्त्रियों से सीखना पड़ेगा। आप क्या ... ... ?

अनंग०—[चौंककर] अरे, यह क्या ? दौड़ो !

कमल०—क्या ?

किशोरी—क्या ?

[नेपथ्य में] दौड़ो म...दा...न, म...द...न... !

अनंग०—पत्र में लिखा है "प्रिय, मैं परिस्थितियों को सुलझाने के लिये मंदार में आत्म-समर्पण करने जा रही हूँ। अब मंदार में डूबना भी मेरे लिये गौरव की बात होगी।

किशोरी—दौड़ो !

[सब वेग से जाते हैं। नेपथ्य में म...द . ा...न की ध्वनि डूबती हुई प्रभा के मुख से निकलकर एक बार फिर गूँज जाती है, मानो शीशे के सामने वह अभिनय का अभ्यास कर रही है।]

पटाक्षेप

नहीं का रहस्य

पात्र-परिचय

हरिनारायण	युनिवर्सिटी-प्रोफ़ेसर
विष्णुकुमार	हरिनारायण के मित्र, ब्रजकिशोर के पुत्र
मनमोहिनी राधारानी	बी० ए०-क्लास की छात्राएँ
मंगल	हरिनारायण का नौकर

नहीं का रहस्य

[अल्मारियों में पुस्तकें सुंदरता के साथ रक्खी हुई हैं। कमरे बीचोंबीच एक बड़ा टेबिल है, जिसके चारो ओर कुर्सियाँ हैं। सामने टेबिल पर क़लमदान है। बुक-शेल्फ़ में पुस्तकें हैं। बीच में एक गुलदस्ता सजा हुआ है, जिसमें कुछ ताज़े फूल महक रहे हैं। कमरे में पर्शियन कारपेट बिछा हुआ है। दीवारों पर अँगरेज़ी-साहित्य के प्रमुख कवियों के चित्र लगे हुए हैं। सामने एक घड़ी है, और उसकी बग़ल में एक कैलेंडर, जिसमें मार्च-महीने का पृष्ठ दिखाई दे रहा है।

प्रभात का समय है। कमरे में हलकी सुनहली धूप आ रही है। प्रोफ़ेसर हरिनारायण एक अँगरेज़ी-पुस्तक पढ़ने में लीन हैं। उनकी आँखों पर सुनहले स्प्रिंग का चश्मा है। वस्त्रों में सादगी है। खुले गले की सफ़ेद क़मीज़ और धोती। पैरों में फ़्लेक्स का स्लीपर है। उनकी आयु पचपन वर्ष की है। बाल सफ़ेद हो गए हैं। मुद्रा में अध्ययनशीलता अंकित है।

कुछ देर पुस्तक गंभीरता से देखने के बाद वे कुछ ज़ोर से वर्ड्सवर्थ की कविता पढ़ने लगते हैं]

*** ऐट् दि कॉर्नर अव् वुड स्ट्रीट, व्हेन डे लाइट एप्पीयर्स,**
हैंग्स ए थ्रश दैट् सिंग्स लाउड इट हैज़ संग फ़ॉर थ्री ईयर्स ;

---

*At the corner of wood street, when day-light appears,
Hangs a thrush that sings loud it has sung for three years;

पुअर सुसेन हैज़ पास्ड बाइ दि स्पॉट् ऍड हैज़ हर्ड
इन दि साइलेंस अव् मार्निंग दि सांग अव् दि बर्ड।
'टिस् ए नोट् अव इंचैंटमेंट ह्वाट् एल्स हर शी सीज़
ए माउंटेन एसेंडिग,' ए विज़न अव् ट्रीज़।
ब्राइट वाल्यूम्स् अव् वेपर............................

[नौकर का प्रवेश। आकर सलाम करता है।]

नौकर—सरकार, मोची आया है।

हरि०—[अपने ही स्वर में]

ब्राइट् वाल्यूम्स अव वेपर...[ध्यान भंग कर] क्या है ?

नौकर—मोची।

हरि०—[किंचित् हँसकर] वर्ड्सवर्थ और मोची। अच्छा संयोग है! [ठहरकर] अच्छा, कह दो, थोड़ी देर ठहरे। [फिर सोचकर] पॉलिश करने के लिये ये काले जूते दे दो। [पुस्तक को फिर हाथ में लेते हुए] देखो, मैं इस समय पढ़ रहा हूँ। बीच में आकर शोर मत करो।

[नौकर का चुपचाप प्रस्थान। हरिनारायण फिर पुस्तक पढ़ने लगते हैं।]

हरि०—*ब्राइट वाल्यूम्स् अव वेपर थ्रू लॉथबरी ग्लाइड,
ऍड ए रिवर फ्लोज़ ऑन थ्रू दि वेल अव्......

Poor Susane has passed by the spot and has heard
In the silence of morning the song of the bird.
'Tis a note of enchantment what ails her she sees
A mountain ascending, a vision of trees.
Bright volumes of vapour..............................
*Bright volumes of vapour through lothbury glide,
And a river flows on through the vale of.........

[नेपथ्य में एक स्वर । हरिनारायण ध्यान से सुनते हैं ।]

प्रोफ़ेसर हरिनारायण का यही मकान है ?

नौकर—हाँ, प अबहिन सरकार किछू पढ़ रहे हैं । हम भीतर नहीं जाइ सकित है ।

वही स्वर—मुझे उनसे इसी समय मिलना है । ज़रा जाकर अंदर ख़बर कर दो ।

नौकर—हियन बाहिरे बैठो । जब फ़ुरसत पैहैं, तब जायके तुम्हार नाम कहि देबे । ए कुरसिवा एहर अही ।

हरि०—[ज़ोर से] मंगल !

[नेपथ्य से] सरकार !

[नौकर का प्रवेश ।]

हरि०—कौन साहब हैं ? उन्हें भीतर भेजो ।

[नौकर का प्रस्थान । प्रोफ़ेसर साहब पेंसिल ओठों के समीप रखकर किसी बात का स्मरण-सा करने लगते हैं ।

एक युवक का प्रवेश । आयु चौबीस वर्ष । सिर से पैर तक अँगरेज़ी लिबास में । नीला सूट । उसी से मिलती हुई टाई । उसी रंग का रूमाल । हाथ में सोने की घड़ी । आकर प्रणाम करता है ।]

हरि०—[प्रणाम की स्वीकृति दे, उठकर प्रसन्नता से] ओहो, विष्णु ! तुम हो ! वही तो, जब तुमने पुकारा, तो मुझे कुछ परिचित-सा स्वर जान पड़ा । मैंने उसी समय तुम्हें बुला भेजा । कहो, यहाँ कैसे ? घर से कब आए ? घर तो सब अच्छी तरह से है ? और तुम्हारे पिताजी...... ?

विष्णु०—[प्रसन्नता के स्वर में] पिताजी बहुत अच्छी तरह से हैं । उन्होंने आपको बहुत-बहुत नमस्ते कहा है । घर पर सब अच्छी तरह हैं ।

हरि०—तुम आए कब ? बैठो, बैठो ।

[कुर्सी की ओर संकेत]

विष्णु०—[कुर्सी पर बैठकर स्वस्थ होकर अपने हाथ की घड़ी देखते हुए] अभी सुबह पाँच बजे की गाड़ी से। वेटिंग रूम में हाथ-मुँह धोया। नाश्ता कर सीधा आपके पास चला आया।

हरि०—क्यों, क्या यहाँ हाथ-मुँह नहीं धो सकते थे ? तुम्हें नाश्ता तो यहाँ भी मिल जाता !

विष्णु०—मुझे यहाँ सब कुछ मिल जाता, पर मैंने सोचा, इतने सबेरे मैं आपको मीठी नींद से क्यों जगाऊँ ? कष्ट ही होता। वहाँ बैरा को ऑर्डर देते ही सब कुछ मिल गया। हॉट् टी, केक्स, टिंड एपिल और सैलड्स भी।

हरि०—यहाँ भी कुछ-न-कुछ मिल ही जाता। तुम्हारा ही घर है। ख़ैर, तुम्हें तकलीफ़ नहीं हुई, यही संतोष है। कहो, तुम्हारे पिताजी आजकल कैसे हैं ?

विष्णु०—कुछ नहीं। १९३२ में वह सर्विस से रिटायर हो गए। तैंतीस साल की सर्विस के बाद अब सरकार से पेंशन पा रहे हैं। स्थायी रूप से घर पर ही रहते हैं। कुछ ज़मीन ले ली है। उसी में काश्तकारी करते हैं। घर का खर्च निकल आता है। एक फलों का बग़ीचा भी लगवा लिया है। बीच में छोटा-सा मकान बन गया है। अधिकतर वे अपना समय वहीं व्यतीत करते हैं। काम भी मज़े में चलता है, और उन्हें एकांतवास भी मिल गया है। जीवन में बड़ी शांति है।

हरि०—अच्छा ! वे भी एकांतवास पसंद करने लगे। मुन्नी कहाँ है ? अब तो वह बड़ी हो गई होगी ?

विष्णु०—हाँ, अब तो बड़ी हो गई। गर्ल्स स्कूल में मैट्रिक में पढ़ती है। पिताजी उसका विवाह नेक्स्ट ईयर कर देना चाहते हैं।

हरि०—अच्छा है, और उसकी पूसी ? वह बिल्ली ?

विष्णु०—[प्रसन्नता से] आपको बहुत पुरानी बातें याद हैं। पूसी परसाल तक तो बराबर घर में रही। एक बार दारोग़ा साहब के टीपू से उसकी झपट हो गई। टीपू और पूसी दोनों को चोट लगी। टीपू तो अच्छा हो गया, पर पूसी बेचारी मर गई। घाव में 'पॉयज़निंग' हो गया। मुन्नी तो उसके लिये अब भी कभी-कभी उदास हो जाती है!

हरि०—[गहरी साँस लेकर] हाय, बड़ी अच्छी बिल्ली थी! जब मैं वहाँ था, तो जाड़े के दिनों में मेरे सिरहने, तकिए के पास, दुबककर बैठ जाया करती थी। इसी पर तुम्हारी मुन्नी मुझसे लड़ने आती थी। मैं उसकी पूसी को क्यों अपने पास बुला लेता हूँ। ओह, वे दिन भी कितने अच्छे थे!

विष्णु०—हाँ, पिताजी भी आपको बहुत याद करते हैं। आप तो उनके लड़कपन के मित्र हैं। प्रत्येक शुभ घटना में वे आपका स्मरण करते हैं। उन्होंने आपके नाम एक पत्र दिया है।

[पत्र निकालने के लिये पॉकेट में हाथ डालता है।]

हरि०—अभी तक क्यों नहीं दिया मुझे? कहाँ है वह?

विष्णु०—[पॉकेट से पत्र निकालते हुए] बातों के प्रवाह में कुछ याद ही नहीं रहा।

[लाल लिफ़ाफ़े में बंद पत्र देता है। हरिनारायण उसे उत्सुकता के साथ खोलकर पढ़ने लगते हैं।]

विष्णु०—भेज तो वह किसी और को रहे थे, पर अंत में उन्होंने यही निश्चय किया कि मैं स्वयं आपकी सेवा में पहुँचूँ। इस तरफ़ मैं भी बहुत दिनों से नहीं आया था। सोचा, अच्छा है, इस तरफ़ का पर्यटन हो जायगा, और आपका दर्शन भी.........।

हरि०—[प्रसन्नता से] अरे, यह तो विवाह का निमंत्रण है! और तुम्हारे ही विवाह का, तुम्हारे ही विवाह का!

विष्णु०—[संकुचित होकर] क्या कहूँ, पिताजी ने मेरे एम्० ए० पास होते ही यह स्वाँग रच डाला। मैंने अनेक बार कहलाया कि मुझे कुछ कमाने योग्य हो जाने दीजिए, फिर मुझे इस बंधन में बाँधिए, पर उन्होंने अपनी ही इच्छा पूरी की।

हरि०—अच्छा है, वृद्ध पिता की इच्छा पूरी करना ही पुत्र का आदर्श होना चाहिए। फिर पिता की इच्छा का अंतिम लक्ष्य भी तो यही है कि अपनी आँखों के सामने तुम्हें सब प्रकार से सुखी कर जायँ। तुम पढ़-लिखकर समझदार भी हो गए हो। युवक भी हो। विवाह के दिन भी यही हैं। अधिक बढ़ जाने पर शादी होने में हम लोगों को वह सुख कहाँ, जो अब होगा।

विष्णु०—[नीची दृष्टि कर] आप भी पिताजी ही के पक्ष के निकले !

हरि०—क्यों? तुम्हें यह क्या कम संतोष होगा कि तुमने अपने वृद्ध पिता की इच्छा-पूर्ति के लिये ही अपना विवाह किया। तुम्हारी अनिच्छा होते हुए भी इस स्वीकृति से पिता को भी क्या कम संतोष होगा? फिर यह जीवन भी चार दिन का है। इंद्र-धनुष का बना हुआ। रंग बनते और बिगड़ते देर ही कितनी लगती है? ये मांगलिक कार्य हैं, इनके करने में आपत्ति क्यों?

विष्णु०—यदि ये मांगलिक कार्य हैं, तो आपने अपने जीवन को क्यों एकाकी बना रक्खा है? इन मांगलिक कार्यों में आपने भाग क्यों नहीं लिया? पिताजी कहते थे, न-जाने क्यों आपने अपना विवाह नहीं किया?

हरि०—विवाह? क्या कहूँ, मैंने अपना विवाह क्यों नहीं किया। विवाह न करने में ही सुख था। ठीक ही किया, मैंने अपना जीवन एकाकी रक्खा।

विष्णु०—क्या मैं कारण पूछ सकता हूँ?

[जिज्ञासा की दृष्टि]

हरि०—विष्णु ! बहुत दिनों की कहानी याद दिला रहे हो। मत पूछो। यह मेरे जीवन की सबसे अधिक दुःखद घटना है।

विष्णु०—क्षमा कीजिए। आप मेरी उत्सुकता बहुत बढ़ा रहे हैं।

हरि०—अच्छा, तो सुनो विष्णु ! मैं भी जब तुम्हारे बराबर था, तब मेरे लिये विवाह परी के पंखों से भी अधिक सुनहला था। विवाह की भावना ख़ून के साथ सारे शरीर में तड़प रही थी। प्रत्येक दिन सोने का था, और प्रत्येक रात चाँदी की। साँस में आनंद की गंगा बहा करती थी। विवाह की याद आते ही आँखें झूम उठती थीं, और कल्पना में एक चित्र खिंच जाता था कि मैं धीरे-धीरे दबे पाँव अपनी सौभाग्य-सुंदरी के पास पहुँच गया हूँ, और उसकी लज्जित आँखों को हँसाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। पर विवाह नहीं हुआ,...मेरा विवाह नहीं हुआ !

विष्णु०—क्यों ?

हरि०—क्या कहूँ कि क्यों नहीं हुआ ! [गुलदस्ते का फूल हाथ में लेकर अन्यमनस्कता से मसलते हुए] जब मेरा विवाह होनेवाला था, तब वे दिन बहुत पुराने थे। हम लोग बड़ों के सामने विवाह के नाम से वैसे ही मुरझा जाते थे, जैसे उँगली के स्पर्श-मात्र से छुईमुई। विवाह मेरा उसी लड़की के साथ होनेवाला था, जो मेरी कल्पना की रानी थी। पर मैंने बनावट से कह दिया 'नहीं', यद्यपि मेरा रोम-रोम अपने न समझे जानेवाले स्वर में पुकार-पुकारकर कह रहा था कि मेरा विवाह इसी लड़की के साथ कीजिए, अवश्य कीजिए, नहीं तो मैं विवाह ही नहीं करूँगा। वह 'नहीं' मेरे मुख की थी, हृदय की नहीं। पर मेरे पिता इस पिशाचिनी 'नहीं' को सचमुच की 'नहीं' समझ गए, और उन्होंने उस लड़की के साथ मेरा विवाह नहीं किया। मैं

पत्थर का दिल लेकर यह देखता रहा कि उस लड़की का विवाह किसी दूसरी जगह हो गया। मेरे फूलों के संसार में आग लग गई। फिर जब मेरा विवाह किसी दूसरी जगह स्थिर हुआ, तो मैंने सचमुच की—हृदय की 'नहीं' की, पर मेरे पिताजी उसे झूठ 'नहीं' समझे। मैं अपने प्रण पर अटल रहा। मैंने अपना विवाह नहीं किया। मैं सोचता था, पिताजी ने मेरी पहली 'नहीं' को सचमुच की 'नहीं' क्यों समझ लिया!

विष्णु०—तब तो मेरे पिताजी अच्छे हैं, जिन्होंने मेरी 'नहीं' को सचमुच की 'नहीं' नहीं समझा।

हरि०—ईश्वर करे, ऐसे कार्यों में तुम्हारी 'नहीं' सदैव 'हाँ' का फल दे। तुम्हारा विवाह तुम्हें सुखी करे।

विष्णु०—[दुःख-पूर्ण स्वर में] बड़ी करुणा-पूर्ण कहानी है आपकी। तो तब से आप एकाकी जीवन ही व्यतीत करते हैं?

हरि०—[साँस लेकर] हाँ, एकाकी। नहीं तो मोची और धोबी के आने पर नौकर मेरे पढ़ने के कमरे में आकर खबर न देता। पर अब मुझे यही जीवन सुखकर हो गया है। रात के समान दिन में भी सपना देखता हूँ। और, अपने जीवन की घटनाओं के साथ हँसता हुआ दिन व्यतीत करता हूँ। सौभाग्य से जीवन-चर्या भी बड़ी शांति-मय है। तीन घंटे विद्यार्थियों को पढ़ा आता हूँ। उनके जीवन को अधिक-से-अधिक आदर्शमय बनाने का प्रयत्न करता हूँ। देश के भावी निर्माताओं को निर्माण करने में भी कितना सुख है! उनके उत्साह को देखकर इन सूखी नसों में भी रक्त का संचार हो जाता है! और उनकी क्रियाशीलता देखकर मेरे उपदेश में भी सजीवता आ जाती है। सच मानो, ये ही युवक और युवतियाँ मेरे जीवन को सँभाले हुए हैं। इन्हीं के सहयोग में रहकर जीवन को जीवन समझता हूँ। ये ही बच्चे मुझे संसार में जीवित रख रहे हैं।

[नौकर का डरते हुए प्रवेश। वह आकर एक विज़िटिंग कार्ड देता है।]

विष्णु०—तो अब चलूँ।

[चलने को उद्यत होता है।]

हरि०—नहीं, बैठो। जल्दी क्या है? अभी आए, और अभी चले? [कार्ड देखकर नौकर से] **भेज दे उन्हें।**

[नौकर का प्रस्थान।]

हरि०—तुमने अपना सामान कहाँ रक्खा? क्या यहाँ नहीं ठहरोगे?

विष्णु०—मैं तो इसी तरह आया हूँ। अभी दोपहर की गाड़ी से लौट जाऊगा। आपके दर्शन कर ही चुका। कुछ मित्रों से मिलकर चला जाऊँगा।

हरि०—नहीं, नहीं, कम-से-कम आज तो तुम्हें ठहरना होगा।

[दो लड़कियों का प्रवेश। दोनों का वय सोलह-सत्रह के लगभग है। वे साफ़-सुथरी सारियाँ पहने हुए हैं। उनके वेष में सौजन्य है। शरीर में कोमलता और सौंदर्य। उनकी भाव-भंगी से ज्ञात होता है कि वे यौवन और आनंद का प्रभात देख रही हैं।]

हरि०—[किंचित् हाथ उठाकर] **कहो मनमोहिनी! कैसे आईं? और तुम राधा!**

[दोनो प्रणाम करती हैं। हरिनारायण प्रणाम स्वीकार कर विष्णु से परिचय कराते हुए]

मेरे मित्र व्रजकिशोर के सुयोग्य पुत्र श्रीविष्णुकुमार एम्० ए० और बी० ए० की छात्राएँ मिस मनमोहिनी और मिस राधारानी। [परस्पर अभिवादन। दोनो हरिनारायण के समीप की कुर्सियों पर बैठती हैं।]

हरि०—कहो, कैसे आना हुआ?

मन०—पिताजी! आज संध्या समय हम लोग आपको कष्ट देना चाहती हैं।

हरि०—पुत्रियों की ओर से पिता को कष्ट ?

मन०—आज राधा की वर्ष-गाँठ है। वह आज से सोलहवें वर्ष में पदार्पण करेंगी। इसी ख़ुशी में उन्होंने अपनी सखियों को संध्या समय छ बजे आमंत्रित किया है। आप भी आइए।

हरि०—मैं भी सखी हूँ, राधारानी ?

[हास्य]

राधा०—मनमोहिनी को बात करना भी नहीं आता। वहाँ मेरी सखियाँ आमंत्रित अवश्य हैं, पर सबकी प्रार्थना है कि आपके पवित्र चरण भी वहाँ हों। इस अवसर पर हमें कुछ उपदेश भी सुनने को मिल जायगा। सभी छात्राएँ आ रही हैं। लेडी-सुपरिंटेंडेंट भी अपने मित्रों के साथ वहाँ होंगी। आपका उस समय कुछ कहना ज़रूरी है।

हरि०—मेरी बच्चियो ! इसके अतिरिक्त मैं कहूँगा ही क्या कि तुम सब सुखी रहो, दीर्घजीवी हो, और भारतवर्ष की सच्ची ललना बनने का गौरव प्राप्त करो !

राधा०—इन अमृतमय शब्दों के साथ न-जाने कितनी बातें आपके मुख से स्वयं निकल आवेंगी। जो बातें अभी आप सोच-कर भी न कह सकेंगे, वे उस समय आपके मुख से धारा-प्रवाह निकलेंगी। वक्तृता अवसर-विशेष के प्रभाव से प्रभावित होकर बनती है।

हरि०—अच्छा, यह पार्टी कहाँ होगी ?

राधा०—उसी होस्टल-क्वाडरेंगल में। जहाँ सरोजिनी नायडू का भाषण हुआ था। आप भी तो प्रारंभ में बहुत अच्छा बोले थे। सभी लड़कियाँ आपकी तारीफ़ कर रही थीं।

हरि०—[हँसते हुए] लड़कियाँ तो चाहे जिसकी तारीफ़ कर दें, और चाहे जिसकी निंदा। उन्हें रोकनेवाला कौन है ? बीसवीं

शताब्दी की लड़कियों की शक्ति का अंदाज़ा कौन लगा सकता है। ख़ैर, इस शुभ निमंत्रण के लिये धन्यवाद !

राधा०—हमें धन्यवाद देकर लज्जित न कीजिए पिताजी ! हमें आपका आशीर्वाद चाहिए, धन्यवाद नहीं। [विष्णु की ओर देखकर] श्रीमान्, आपको भी सादर निमंत्रण है।

विष्णु०—धन्यवाद ! मैं न आ सकूँगा। मुझे आज ही संध्या की गाड़ी से सहारनपुर लौट जाना है।

मन०—कोई आवश्यक कार्य है ?

हरि०—[विष्णु की ओर संकेत करते हुए] इनका विवाह होनेवाला है। पर [विष्णु से] विष्णु ! अभी तो काफ़ी समय है। चौबीस मार्च। [कैलेंडर की ओर दृष्टि।]

मन०—[हँसकर] पर कुछ जल्दी पहुँच जाने में हानि ही क्या है। अच्छी बात है। तब वर्ष-गाँठ से विवाह का मूल्य अधिक है। आपको मेरी बधाई है !

राधा०—मेरी भी बधाई स्वीकार कीजिए !

विष्णु०—धन्यवाद ! आप दोनों को भी मैं विवाह का निमंत्रण देता हूँ।

मन०—धन्यवाद ! खेद है, हम लोग न आ सकेंगी। जिस प्रकार आज ही संध्या की गाड़ी से आपको सहारनपुर लौट जाना है, उसी प्रकार आज ही संध्या से हमें अपनी पढ़ाई प्रारंभ करनी है। आपकी सहारनपुरवाली गाड़ी और हमारी पढ़ाई आज ही साथ-साथ चलेगी।

विष्णु०—पर परीक्षा तो चौबीस एप्रिल से होगी। आज तो मार्च की दूसरी तारीख़ है।

राधा०—चौबीस एप्रिल से नहीं, चौदह एप्रिल से। आपको अपने विवाह की तारीख़ चौबीस हर जगह याद आ जाती है।

[हास्य]

विष्णु०—[लज्जित होकर] ख़ैर, चौदह एप्रिल सही। पर आज तो दो मार्च है।

मन०—पर जल्दी पढ़ाई करने में हानि ही क्या है ? शुभ कार्यों के प्रारंभ में अक्सर लोग जल्दी कर ही दिया करते हैं। जब किसी कार्य के करने में कुछ लोग समय से पहले अपने स्थान पर पहुँच जाते हैं, तो यदि हम लोगों ने पढ़ाई ज़रा जल्दी शुरू कर दी, तो हानि ही क्या है ?

हरि०—व्यंग्य मत करो मोहिनी ! यदि आज ये यहाँ रह जायँगे, तो मैं इन्हें अपने साथ लेता आऊँगा।

राधा०—तब ठीक है। आप इन्हें अपने साथ लेते आइए, और ये अपने साथ मिठाई लेते आवें। इनकी मिठाई का मूल्य मेरी वर्ष-गाँठ की मिठाई से बहुत अधिक होगा।

विष्णु०—[चपलता से] यदि आपकी यह सजीली सोलहवीं वर्ष-गाँठ न होती, तो शायद मैं यह बात मान लेता।

हरि०—चुप, विष्णु ! दोनों मिठाइयाँ बहुत मीठी होंगी। मुझे इसका विश्वास है। तुम लोग तो छोटे-छोटे बच्चों की तरह लड़ने-झगड़ने लगे। [राधा की ओर देखकर] क्यों राधा, आज तो युनिवर्सिटी है ?

राधा०—[घड़ी की ओर देखकर] जी हाँ, अब हमें आज्ञा दीजिए। सत्रह मिनट रह गए हैं दस बजने में।

हरि०—[हाथ उठाकर] अच्छा, अब तुम लोग जाओ। मैं तुम्हारे समारोह में सम्मिलित होने का प्रयत्न अवश्य करूँगा। संभव होगा, तो विष्णु को भी लेता आऊँगा।

राधा०—कृपा होगी। [हाथ जोड़कर] प्रणाम।

मन०—[हाथ जोड़कर] प्रणाम।

[हरिनारायण और विष्णुकुमार प्रणाम स्वीकार करते हैं। मन-मोहिनी और राधारानी का प्रस्थान।]

विष्णु०—ये दोनो बी० ए०-क्लास में हैं ?

हरि०—हाँ, इसी वर्ष इंटर पास होकर आई हैं। राधा तो आगरा-निवासी मेरे एक वकील मित्र की बहन है, और मनमोहिनी वकील साहब के किसी संबंधी की लड़की। उन्होंने दोनो को मेरे पास भेज दिया है। मैंने उन्हें होस्टल में जगह दिला दी है। दोनो बड़ी ही सुशील और नम्र हैं। अपने निश्छल व्यवहार से उन्होंने एक अलग संसार-सा बना लिया है। तभी तो आज राधा की वर्ष-गाँठ पर सारे होस्टल में समारोह है। लेडी-सुपरिंटेंडेंट भी उत्साह के साथ अपने मित्रों के साथ वहाँ होंगी। मैं तो इन्हें देखकर बहुत ही प्रसन्न होता हूँ। अनुभव करता हूँ, मेरी ही पुत्रियाँ हैं। पढ़ती हैं। खाती हैं। खेलती हैं। अपने सुख-दुख में मुझे पूछ लिया करती हैं। मेरे लिये यही बड़े संतोष की बात है। मैं उन्हें अपने पास नहीं रखना चाहता। अपने नीरस और वैराग्यमय जीवन की छाया उन पर नहीं डालना चाहता। ये फूल-सी सुकुमार बेटियाँ हैं। क्यों अपना जीवन-भार उनके सिर पर डालूँ—अभी से उन्हें चिंतित क्यों करूँ ? ये दिन तो उनके पहनने-खाने के हैं।

विष्णु०—[गहरी साँस लेकर] आपने तो संसार से नाता ही तोड़ लिया। आपको एकांत अच्छा लगता है ?

हरि०—हाँ, अब जीवन के दिन ही कितने रह गए हैं ? जीवन के बाद तो फिर शायद एकाकी ही रहना पड़े। फिर किसका साथ होगा ? अभी से एकांत सही। तुम लोग सुख और आनंद से रहो। तुम्हारे लिये संसार अभी सुनहला है। जितना हँसते बने, हँसो। तुम लोग फूलों से बने हुए हो। बिजली के पंखों के समान तुम्हारे जीवन के दिन रंगीन हैं। प्रभात के समान उज्ज्वल, चाँदनी की तरह निर्मल तुम्हारे ओठों में आनंद घुला हुआ है, और आँखों में हँसी। काँटों को भी तुम लोग फूल समझ सकते हो। पर मैं ? मेरे लिये अब

संसार में फूल नहीं हैं। हैं भी, तो वे सब काँटे हो गए हैं। अब मैं एकाकी हूँ, और एकाकी ही रहना चाहता हूँ। केवल स्मृतियों का गात्र मेरे पास है। उसी को चूमता हूँ, और उसी को प्यार करता हूँ। अब जीवन एक अँधेरा प्रदेश है, जहाँ दिन एक महीने का होता है, और रात एक वर्ष की। हाँ, तुम्हारे विवाह की तारीख़ क्या है? चौबीस मार्च?

[कैलेंडर की ओर दृष्टि।]

विष्णु०—हाँ, [अन्यमनस्क होकर] आपने मेरे मन को न-जाने कैसा कर दिया! आह, आपका जीवन भी एक रहस्य है। यह सब सुनकर तो अब......!

हरि०—विष्णु, तुम अपने माता-पिता की आशा हो, और भारत के भाग्य! तुम्हारे लिये कार्य-क्षेत्र में पुकार है। दौड़कर जाओ। मेरी कहानी से क्या तुम अपने कर्तव्य को भूल जाओगे? मैं तुम्हारे विवाह में अवश्य आऊँगा। वधू के लिये स्वदेशी प्रदर्शनी से कम-से-कम १५० रुपए की साड़ी तो अवश्य लाऊँगा। तुम्हारे विवाह के लिये मेरी सबसे बलवती मंगल कामना है। क्या आज तुम रुक सकोगे?

विष्णु०—नहीं,, मुझे आज ही जाने की आज्ञा दीजिए। पिताजी ने एक दिन भी ठहरने की आज्ञा नहीं दी।

हरि०—तो फिर तुम्हें उनकी आज्ञा के विरुद्ध कैसे रोकूँ? उनसे मेरा सप्रेम नमस्ते कहना। मुन्नी को आशीर्वाद। उससे कह देना कि वह अपनी बुआ के लिये ज़्यादा रंज न करे, और कहना कि अपने चाचा को तू बिलकुल भूल गई?

विष्णु०—अवश्य। अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ। प्रणाम।

[हाथ जोड़ता है।]

हरि०—सुखी रहो।

[विष्णु का प्रस्थान ।]

हरि०—[सोचते हुए पुस्तक उठाकर पढ़ने लगते हैं ।] *

ऐंड ए रिवर फ़्लोज़ आन थ्रू दि वेल ऑव् चीपसाइड,
ग्रीन पास्चर्स शी व्यूज़ इन दि मिड्स्ट ऑव् डेल
डाउन विच शी सो ऑफ़ेन हैज़ ट्रिप्ड विद् हर पेल
ऐंड ए सिंगिल स्माल कॉटेज, ए नेस्ट लाइक ए डव्ज़्
दि वन् ओन्ली ड्वेलिंग ऑन् अर्थ दैट् शी लव्ज़
शी लुक्स..

[घड़ी में दस बजते हैं । नौकर का प्रवेश ।]

नौकर—सरकार, खाना तैयार अही ।

हरि०—[पुस्तक बंद करते हुए] मंगल, मैं खाना नहीं खाऊँगा । आज मुझे युनिवर्सिटी जल्द जाना है ।

[उठ खड़े होते हैं ।]

पटाक्षेप

---

*And a river flows on through
the vale of cheapside
Green pastures she views in the
midst of dale
Down which she so often has tripped
with her pail
And a single small cottage, a nest
like a dove's
The one only dwelling on earth that
she loves
She looks..

बादल की मृत्यु

पात्र-परिचय

संध्या।

बादल।

वायु।

बादल की मृत्यु

[स्थान—पश्चिम आकाश ।

समय—रात्रि होने में कुछ विलंब है । क्षितिज अरुण-वर्ण है । सूर्य की अस्त होती हुई किरणें गिरि-शृंगों को चूम रही हैं, जैसे मृत्यु-शय्या पर लेटी हुई मा अपने वयस्क पुत्र को चूम रही है ।

संध्या के साथ एक बड़ा बादल ।]

बादल—[आगे बढ़कर] क्या जा रही हो संध्या ? देखो न, हमारे सहयोग से तुम्हारा शरीर कितना सुंदर है ! किसी महारानी के रंग-बिरंगे शरीर के समान फैली हुई हो ! पुष्पों के रंग और उनके सौकुमार्य से सजी हुई तुम्हारे उर की यह छवि !! न संध्या, न जाओ ।

संध्या—[मलिन होकर] बादल, यह अपनी प्रशंसा रहने दो । यदि मैं रुक जाऊँ, तो क्या हो ? अस्थिरता ही तो जीवन का सौंदर्य है । एक क्षण में मेरे सौंदर्य की हिलोर और दूसरे क्षण में उसका विनाश ! यही संसार का स्वरूप है । दूसरों को भी तो जीवन का अवसर दो । यह रंगमंच किसी एक पात्र के अधिक देर तक ठहरने के लिये नहीं है । यदि मेरी छवि में ही विश्व के नेत्रों की आकांक्षा .. वह देखो, दो तारे ! आहा, कैसे चमक रहे हैं !!

बादल—चमकने दो । दो शैतान बच्चों की तरह वे समय के पहले ही अपने घर से बाहर आकर खेल रहे हैं । अभी शेष तारों के निकलने में कितनी देर है ? देखो, अभी सूर्य की किरणें उस शृंग पर चमक रही हैं । कितनी उज्ज्वल हैं !

संध्या—और वृक्षों के नीचे की वह घनी छाया !

बादल—छाया ? वह तो किसी पापी के हृदय के समान सदैव

नीचे की ओर रहा करती है। दिन में भी तो छाया का अस्तित्व है। संध्या, न जाओ। देखो, तुम आकाश के छोटे कोने ही में तो हो। रात्रि के लिये सारा आकाश पड़ा हुआ है।

संध्या—आकाश के केवल एक कोने में रहने पर भी परमात्मा की सत्ता के समान मैं सारे आकाश में व्याप्त हूँ। भोले बादल, स्वतंत्रता की उपासिका दो रानियाँ एक साथ रहना नहीं जानतीं। यह बात समझ सके हो या नहीं?

बादल—महारानी संध्या! रुको, कुछ देर सरिता में अपना मुख देखो। लहरों की लचकती हुई रूप-राशि में यौवन के समान बरस पड़ो। पृथ्वी के अंग में सुनहले अंगराग के समान लगी रहो। परमात्मा की सत्ता के समान कुछ देर क्षितिज-रेखा में सुनहले फूल गूथो। क्यों रानी, परमात्मा की सत्ता किसे कहते हैं?

संध्या—[हँसकर] तुम मुझे बातों में नहीं भुला सकते। बादल, देखो, वायु की वह लहर आई!

[वायु का प्रवेश। बादल अलग हट जाता है।]

वायु—[संध्या को देखकर] अरे, अभी तक तुम यहीं हो?

संध्या—[उदास होकर] कुछ नहीं, बादल को अपने प्रस्थान समय का अंतिम संदेश दे रही थी।

वायु—[शीघ्रता से] संदेश? अब उसे उन दो तारों का संदेश सुनने दो। वे आकाश में महारानी रात्रि के आने का संदेश सुना चुके हैं—अभी दो क्षण पहले।

बादल—[समीप आकर, टेढ़ा होकर गर्व से] सुनाने दो। [वायु का तेज़ी से प्रस्थान] महारानी संध्या यहीं रहेंगी। [अपने शरीर की ओर देखकर] मत जाओ महारानी, मत जाओ।

[क्षितिज पर पतन]

संध्या—[व्याकुल होकर] जाऊँगी, बादल! यह मोह घातक

है । मैं भी तो निर्बल होती जा रही हूँ। अब भी तुम्हें रूप की प्यास है?

[प्रस्थान ।]

[वायु का पुनः प्रवेश और बादल पर प्रहार ।]

बादल—[फैलकर कराहते हुए] आह, संध्या! संध्या...... अब मेरा शरीर !!

[धीरे-धीरे बादल काला पड़ जाता है ।]

दस मिनट

पात्र-परिचय

महादेव—एक साधारण व्यक्ति

बलदेव—महादेव का मित्र

वासंती—बलदेव की बहन

पुलिस-इंस्पेक्टर और चार सिपाही

स्थान—कानपुर से बीस मील दूर

समय—१८५७ के ग़दर के बाद, जब पुलिस अपने कार्य में पूर्ण सतर्क नहीं थी।

यह एकांकी नाटक प्रयाग-विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा प्रथम बार युनिवर्सिटी-थिएटर-हॉल में, १५ ऑक्टोबर, १९३४ को, अभिनीत हुआ था। निम्न-लिखित विद्यार्थियों की भूमिका थी—

महादेव—श्रीरामसनेही वर्मा बी० ए०

बलदेव—श्रीगयाप्रसाद सुलेरे

इंस्पेक्टर—श्रीजनार्दन मिश्र

सिपाही—श्रीरामदास, श्रीश्रीकृष्ण गुप्त बी० ए०, श्रीसत्यनारायण मिश्र बी० ए० और श्रीबद्रीप्रसाद राय बी० ए०

दस मिनट

[आधी रात का समय। एक सजा हुआ कमरा। उत्तर और दक्षिण दिशाओं में दो दरवाज़े हैं। उत्तर दिशा का दरवाज़ा बहुत छोटा है, जिसका संबंध बाहर जानेवाली सुरंग से है। दक्षिण दिशा के दरवाज़े के समीप एक खिड़की है, जो बंद है। कमरे के ठीक बीच में एक टेबिल है, जिसके दोनो ओर दो कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। सामने एक घड़ी लगी हुई है, जिसमें दो बजकर पंद्रह मिनट हुए हैं।

कमरे के एक कोने में एक पलँग बिछा हुआ है, जो कुछ पुराना हो गया है। उस पर एक प्रौढ़ व्यक्ति बहुत साधारण कपड़े पहने सो रहा है। उसकी आयु लगभग पैंतीस वर्ष की है। उसके मुख पर थकावट के चिह्न हैं। चारो ओर शांति है। कमरे में धीमा प्रकाश हो रहा है।

दक्षिण के दरवाज़े पर खट्-खट् की आवाज़।]

एक स्वर — महा...देव, महा देव !

[महादेव आलस से सिर उठाता है। वह आँख मलता हुआ भौंहें सिकोड़कर दरवाज़े की तरफ़ देखता है।]

वही स्वर — महादे...व ! [अंतिम स्वर 'व' धीमा]

महादेव — [इच्छा न होते हुए भी उठकर] **आधी रात को भी चैन नहीं।** [दरवाज़े के समीप पहुँचकर चिढ़े हुए स्वर में] **कौन है इस समय ?**

वही स्वर—[भर्राया हुआ] बलदेव ।

महादेव—[आश्चर्य से] ऐं बलदेव ! तुम इस [दरवाज़ा खोलता है ।] समय कैसे [चौंककर पीछे हटते हुए] आ...[मंद स्वर] ए .. ? यह . क्या.... ?

[बलदेव का प्रवेश । वह पच्चीस वर्ष का नवयुवक है । उसके वस्त्र खून से रँगे हुए हैं । कुर्ते का ऊपरी हिस्सा फटा हुआ है । हाथ में छुरी है, जो हाथ काँपने के कारण वस्त्र में उलझ रही है । बलदेव के मुख पर भय अंकित है । वह सहमी हुई नज़रों से इधर-उधर देख रहा है ।]

बलदेव—[भर्राई हुई आवाज़ में] महादेव, मैंने ख़ू...न कर दिया !

महादेव—[विकृत होकर] ख़ून कर दिया ? किसका ? कब ?

बलदेव—[सँभलकर] नहीं, नहीं, मैंने ख़ून नहीं किया । किसी दूसरे आदमी ने ख़ून कर मेरे हाथ में छुरी दे दी । मैं निर्दोष हूँ । कौन कहता है, मैंने ख़ून किया है ? ऐं ?

महादेव—अरे, अभी तो तुम्हीं ने कहा था । ये तुम्हारे कपड़े ।

[बलदेव के कपड़े हाथ से छूता है ।]

बलदेव—[शिथिल होकर] मैंने कहा था ? तो हाँ, मैंने ख़ून कर दिया । उसी पापी केशव का । मेरी बहन को मैली दृष्टि से देखने-वाले [ओंठ चबाते हुए] केशव का । [व्यंग्य की हँसी हँसकर] हुँः, छिपकर आया था । जब संसार की आँखें सो रही थीं । जाग रही थीं केवल चार आँखें । दो ईश्वर की और दो मेरी । अपने हृदय को काले पाप में और अपने शरीर को काले वस्त्र में छिपाकर आया था । [झुककर] इस तरह झुककर आ रहा था । मैंने एक ही वार में उसे पूरा झुका दिया । देखते हो, यह छुरी और सफलता के रंग में रँगे हुए ये कपड़े !

[गर्व की मुद्रा]

महादेव—[क्रोध से] तुम्हारी बहन को मैली दृष्टि से देखता था वह ? तुमने छुरी कहाँ मारी ?

बलदेव—छुरी ? उसकी बग़ल में। यों। [हवा में छुरी का वार करता है।]

महादेव—बग़ल में ? नासमझ ! आँखों में घुसेड़ देनी चाहिए थी। वे पापी आँखें संसार का प्रकाश न देख सकतीं। जिन आँखों में पाप का ख़ून था, उन आँखों में बहन के अपमान का ख़ून होना चाहिए था। छिः ! बदला लेना भी न आया ! [घूरता है।]

बलदेव—[शीघ्रता से] तो वह मैं अभी कर सकता हूँ। फिर जाता हूँ।

[उद्यत होता है।]

महादेव—तुम तो इस प्रकार कह रहे हो, जैसे वह वहीं पड़ा होगा। पुलिस उसे न जाने कब का उठा ले गई होगी।

बलदेव—पुलिस को वह शरीर मिल नहीं सकता। जब तक मैं उसके अंग-अंग काटकर न फेंक दूँगा, तब तक मुझे शांति न मिलेगी। मैंने लाश छिपा रक्खी है। वहीं पास की सबसे कटीली झाड़ी में।

महादेव—पर उसे अब मारकर ही क्या करोगे ? अब तो वह नीच मर ही गया होगा। अब उसे फिर मारने से क्या लाभ ?

बलदेव—[उग्रता से] नहीं, नहीं, बदला लेना सीखने दो। उसकी आँखें अब भी खुली होंगी, मानो उनकी वासनामयी प्यास अभी नहीं बुझी। उफ़, नारकी ! तुम्हारे रोकने पर भी मैं [उत्तर दिशा के छोटे दरवाज़े से प्रस्थान। नेपथ्य से वाक्य की पूर्ति।] अवश्य जाऊँगा। हृदय की आग [क्रमशः दूर होते हुए मंद स्वर से] तो बुझा''''सकूँगा।

महादेव—[खिड़की खोलकर देखता हुआ गया] **चला गया ? आह पापी संसार !**

[महादेव सोचता हुआ पलँग के ऊपर बैठ जाता है। दक्षिण दरवाज़े पर फिर खटका होता है।]

महादेव—[दृढ़ता से] **अब कौन है ?** [उद्विग्न होकर] **मेरे लिये यह रात भी दिन है !**

[खिड़की पर खटका होता है।]

महादेव—[दरवाज़े के पास जाकर] **कौन है ? नाम बतलाओ।**

बाहर से—**पुलिस।**

महादेव—**पुलिस ? पुलिस का इस समय मेरे यहाँ क्या काम ?**

पुलिस—[ज़ोर से] **दरवाज़ा खोलो।**

[महादेव दरवाज़ा खोलता है। पुलिस-इंस्पेक्टर का प्रवेश। वह तीस वर्ष का मोटा-ताज़ा आदमी है। उसकी मूछें चढ़ी हुई हैं। पूरी वर्दी पहने हुए है। उसके हाथ में पिस्तौल है। साथ में चार सिपाही हैं, जो सभी पुलिस की वर्दी में हैं। सभी सिपाहियों के हाथों में भाले हैं।]

पुलिस—[आते ही] **सारे हथियार रख दो।**

[पिस्तौल सामने करता है।]

महादेव—[पीछे हटकर] **कैसे हथियार ? किसके हथियार ?**

इंस्पेक्टर—[घूरते हुए] **अच्छा, तुम अकेले ही हो। तुम्हारा नाम महादेव है ?**

महादेव—**हाँ।**

इंस्पेक्टर—**तुम्हारे घर अभी कोई आदमी आया था ?**

महादेव—**शायद।**

इंस्पेक्टर—**शायद ? मैंने दूर से देखा। एक आदमी इसी ओर चला आ रहा था।**

महादेव —[धीरे-धीरे] आदमी...नहीं...था...।

इंस्पेक्टर—शैतान था !

[गर्व से कुर्सी पर बैठता है ।]

महादेव—नहीं, देवता । देवता था । अपनी बहन के सम्मान की रक्षा करनेवाला एक देवता था ।

इंस्पेक्टर—देवता ? इसके क्या मानी ?

महादेव—देवता के क्या मानी होते हैं ?

इंस्पेक्टर—ख़ाक ! [पैर पटककर] बारह और दो बजे के बीच में एक ख़ून हुआ है । ख़ून के धब्बे पड़े हुए पाए गए हैं । गश्त करते समय मेरे जूते बिलकुल ख़ून से लथपथ हो गए । उसी समय एक मनुष्य इस घर की ओर आता हुआ दिखाई दिया । लाश खोजने पर भी मुझे नहीं मिली, वह न-जाने कहाँ है !

महादेव—[शांति से] वह मनुष्य के सिवा और किसी का ख़ून नहीं हो सकता ?

इंस्पेक्टर—मैं उसे मनुष्य का ख़ून ही क्यों न मानूँ ? जब वह मनुष्य संदेहावस्था में आधी रात को भागा है । मुझे अभी लाश खोजनी होगी । यह सोचकर कि जब तक मैं लाश खोजूँ, कहीं वह हत्यारा भाग न जाय, इसीलिये मैं पहले उस आदमी को पकड़ लेना चाहता हूँ । फिर चाहे वह निरपराध ही क्यों न निकले । बतलाइए, वह मनुष्य कहाँ है । उसने बारह और दो बजे के बीच में ख़ून किया है । [सोचकर] हाँ, उसी समय ख़ून हुआ है ।

महादेव—[निर्भयता से] हुआ करे, उससे मेरा क्या ? [उन्माद में] उसी ख़ून को लेकर प्रभात की पूर्व दिशा मुस्कुरा उठेगी, और उसी लालिमा से सारे संसार में आलोक छा जायगा । संसार के कण-कण में वही रक्त जीवन का अनंत संदेश एक बार ही प्रातःकाल की मधुर समीर में बिखरा देगा ।

इंस्पेक्टर — [तीव्र स्वर से] यह क्या बक रहे हो ? [मुँह बनाकर] एब्सर्ड नानसेन्स ! जो कुछ पूछता हूँ, ठीक-ठीक बतलाओ । जो आदमी अभी-अभी यहाँ आया था, वह कहाँ गया ?

महादेव—[सोचते हुए] वह दस मिनट बाद आएगा । ठीक दस मिनट बाद । उस समय आइए ।

इंस्पेक्टर – [व्यंग्य से] आप कृपया मकान ख़ाली कर दें । मैं मकान की तलाशी लूँगा । वह चाहे दस मिनट में आए, चाहे बीस मिनट में । आप समझे न ?

[शान से उठ खड़ा होता है ।]

महादेव—अच्छा, आपके पास तलाशी का वारंट है ?

इंस्पेक्टर – [गर्व से] मेरा हुक्म ही वारंट है जनाब !

महादेव – [शांति से] आधी रात के समय यह आपकी ज़्यादती है । ख़ैर, मेरे पास केवल यही तो कमरा है । जहाँ तक आपकी नज़र जाती है, उतना ही हिस्सा मेरे अधिकार में है । उसे ही देख लीजिए । क्यों, दिखाई पड़ता है कोई ख़ूनी ?

इंस्पेक्टर—बस, तुम्हारे अधिकार में इतना ही स्थान है ?

महादेव—केवल इस मकान में इतना ही हिस्सा बच रहा है । शेष गिर गया है । उसके पीछे मैदान है ।

इंस्पेक्टर—[नम्र होकर] देखो, यदि बतला दोगे, तो भारी इनाम पाओगे । समझे ? नहीं तो संदेह में मैं तुम्हीं को गिरफ़्तार करूँगा ।

महादेव – [आगे बढ़कर] ख़ुशी से गिरफ़्तार कर सकते हैं आप । पर मैं धर्म की शपथ लेकर कह सकता हूँ कि मैं बिलकुल निरपराध हूँ ।

इंस्पेक्टर—मैं धर्म-वर्म कुछ नहीं जानता । सच-सच बतला दो, तुम ख़ूनी के बारे में क्या जानते हो ?

[महादेव को तीव्र दृष्टि से देखता है ।]

महादेव—[उत्साह से] कह रहा हूँ, आप दस मिनट बाद आइए। दो बजकर चालीस मिनट पर।

[घड़ी की ओर देखता है ।]

इंस्पेक्टर—और, यदि मैं दस मिनट यहीं ठहरूँ, तो ?

महादेव—[सोचकर] तो शायद वह न आए।

इंस्पेक्टर—क्यों ? [जिज्ञासा की दृष्टि]

महादेव—पुलिस और ख़ूनी में कुत्ते और बिल्ली का संबंध है। दोनों एक दूसरे को संदेह की दृष्टि से देखा करते हैं।

इंस्पेक्टर—अच्छा, [मुस्कुराकर] एम्यूज़िंग नानसेन्स ! अच्छा, मैं आपकी तलाशी दो मिनट बाद लूँगा। [सिपाहियों से] देखो, इस मकान को चारो तरफ़ से घेर लो। मैं इस बीच में लाश का पता लगा लेता हूँ, जिससे मेरा संदेह मिट जावे। मैं अभी आया।

सिपाही—[सलाम करके] बहुत अच्छा।

[जाते हैं ।]

इंस्पेक्टर—[व्यंग्य से] अच्छा, आप दो मिनट आराम कर सकते हैं।

[इंस्पेक्टर का प्रस्थान। महादेव दरवाज़ा बंद करता है। वह कुछ क्षण टेबिल के पास सिर झुकाए खड़ा रहता है। उत्तर-दरवाज़े से आवाज़ आती है। महादेव धीरे से जाकर दरवाज़ा खोलता है। बलदेव का प्रवेश। वह और भी अधिक ख़ून से रँग गया है।]

बलदेव—[प्रसन्न होकर] पार हो गई, छुरी दोनो आँखों के पार हो गई। अब शायद अगले जन्म में वह किसी को मैली दृष्टि से न देखे।

महादेव—[गंभीर होकर] संभव है, अगले जन्म में वह अंधा हो। पाप-दृष्टि से देखना कैसा ?

बलदेव—[अपने ही विचारों में लीन होकर, आँखें फाड़कर] उफ़, रक्त से समस्त पृथ्वी लाल हो गई थी, मानो मेरे इस कृत्य को देखकर पृथ्वी भी खिलखिला उठी थी। मैं भी दिल खोलकर ख़ूब हँसा।

[मुँह विकृत कर हँसता है।]

महादेव—[गंभीर होकर] उसी उल्लास की हँसी से लाल होकर कल प्रातःकाल सूरज हँसेगा, गुलाब हँसेगा, और उसके साथ-साथ कलियाँ भी......। हाँ, एक काम करो।

बलदेव—[उत्सुक होकर] वह क्या ?

महादेव—यह विजय के रंग में रँगा हुआ कपड़ा उतार दो। [संदूक से नया कुरता निकालते हुए] यह लो, नया कुरता। इसे पहन लो। इस दुनिया की पलकों में संदेह की पुतलियाँ हैं।

बलदेव—[दृढ़ता से] रहने दो। इसका उत्तर मैं अपने गले के ख़ून से दूँगा।

महादेव—न्याय से लड़नेवाले शत्रु को अपने गले के ख़ून से उत्तर देना चाहिए। यह तो न्याय का युद्ध नहीं है। तुमने चाहे कितने ही बड़े पापी को न्याय-युक्त होकर मारा है, पर प्राण लेने के कारण तुम्हें थोड़ी-न-थोड़ी सज़ा मिलेगी ज़रूर। चाहिए तो यह था कि न्यायी तुम्हें तुम्हारे कार्य पर पुरस्कृत करता, पर क्या कभी ऐसा होना संभव है ?

बलदेव—[सोचकर] अच्छा, तुम [कुरता उतारते हुए] न मानोगे। तुम्हारा हठ बड़ा कठिन है। अब तो [नया कुरता पहनते हुए] तुम प्रसन्न हुए ?

महादेव—थोड़ा विश्राम करो। दस मिनट तक। [सोचकर] नहीं, दस मिनट तक क्या करोगे ? जाओ, अपनी बहन का समाचार तो लो।

बलदेव—[स्थिर होकर] वह तो माता के प्रेम के समान शांत और स्निग्ध संसार में विचर रही होगी। मैं उसे उस शांति के निर्झर से निकालकर क्यों जागृति के पत्थर पर फेंक दूँ? प्रातःकाल सूर्य की किरणें उसे स्वयं जगा लेंगी।

महादेव—नहीं, भाई के हाथ सूर्य की किरणों से अधिक कोमल और प्रेममय हैं। महात्मा तुलसी ने सहोदर भ्राता के संबंध में क्या लिखा है?

बलदेव—[आश्चर्य से] तो क्या मुझे ठहरने न दोगे?

महादेव—भाई, यहाँ ठहरने की अपेक्षा बहन का कुशल-समाचार जान लेना अधिक आवश्यक है। जिस बहन के सम्मान का मूल्य एक मनुष्य के जीवन से अधिक है, उसका कुशल जानने के विषय में इतना संकोच क्यों है? उससे मिलकर, तुम फिर यहाँ आकर मुझसे बातें कर सकते हो।

बलदेव—[खून से रँगे हुए कुरते और छुरी सँभालकर उठाते हुए] अच्छा, भाई, जाता हूँ। अभी थोड़ी देर बाद आऊँगा। यदि पुलिस को मेरी गंध न मिली, तो……।

महादेव—[जिज्ञासा से] यह कुरता और छुरी क्यों लिए जाते हो? बहन के समीप इनका क्या काम?

बलदेव—[हताश होकर] तुम मेरी इच्छा सदैव इसी प्रकार रोक दिया करते हो।

[बलदेव का एक कोने में छुरी और कुरता रखकर उत्तर-दरवाज़े से प्रस्थान।]

महादेव—[सोचता हुआ] यह सम्मान…का…प्रतिशोध!

[कुर्सी पर बैठकर गुनगुनाता है।]

मेरी साँसों के स्वर में
गूँजे मेरा बलिदान।
गूँजे मेरा बलिदान।

[अपने दक्षिण-दरवाज़े पर खटका] जीवन...[फिर खटका] मैं...ऐं...पा...ा...।

महादेव—ठहरो।

[खून से भरा हुआ कुरता पहनकर हाथ में छुरी लेता है। दरवाज़ा खोलते हुए]

कौन है ?

[इंस्पेक्टर का पिस्तौल लिए प्रवेश।]

इंस्पेक्टर—खूनी किधर है ? [महादेव को खून के वस्त्रों में देखकर] ऐं ..खूनी...

महादेव—[दृढ़ता से] मैं हूँ खूनी।

इंस्पेक्टर – तुम हो खूनी ?

[आश्चर्य प्रकट करता है।]

सिपाहियों ने अभी तुम्हारे कमरे में कुछ बातों की भनक सुनी थी।

महादेव – मैं गाना गा रहा था।

इंस्पेक्टर—हूँ ! [घूरता है] तुम खूनी हो ?

महादेव—देखते नहीं ये कपड़े और यह छुरी !

इंस्पेक्टर – क्या तुम्हीं खूनी हो ? तुम तो कहते थे, दस मिनट बाद खूनी आएगा।

महादेव—हाँ, दस मिनट बाद तुम्हें खूनी मिला या नहीं ? खूनी तुम्हारे समाने खड़ा है, और तुम संदेह में पड़े हुए हो। लाश आपने देखी ? उसके बग़ल और आँखों में घाव है। [तीव्र दृष्टि]

इंस्पेक्टर—[सिर हिलाते हुए] हाँ, पास ही एक काँटेदार झाड़ी में लाश बुरी तरह घायल मिली। उसकी आँखें फोड़ डाली गई हैं, और उसकी बग़ल में छुरी घुसेड़ी गई है।

महादेव—[आगे बढ़कर] और वह छुरी यह है।

[छुरी दिखलाता है ।]

इंस्पेक्टर—[सिपाहियों से] **गिरफ़्तार करो इसे। पुलिस-थाने ले चलो। इस मकान में ताला बंद कर दो। इसके कोई संबंधी तो हैं ही नहीं। थाने पर जाकर मामला तय होगा।**

[सिपाही महादेव को गिरफ़्तार करते हैं। उत्तर-दरवाज़े से आवाज़ आती है।]

महा...देव !

[धीमे स्वर में]

महा...देव !

इंस्पेक्टर—[तीव्र स्वर में] **कौन है ?**

बाहर से—उसका मित्र बलदेव।

[बाहर से धीमे स्वर में] **उसके मित्र की बहन वासंती !**

इंस्पेक्टर—[ज़ोर से] **इस समय महादेव किसी से नहीं मिल सकता। वह ख़ूनी है।** [सिपाहियों से] **जल्दी चलो।**

[सबका प्रस्थान।]

बाहर से धीमे स्वर में फिर महादेव का नाम सूनेपन में गूँजता है।]

पृथ्वीराज की आँखें

[महाकवि चंद ने अपने ग्रंथ पृथ्वीराज-रासो के छियासठ समयो (बड़ी लड़ाई समयो) में पृथ्वीराज का क़ैद होकर ग़ोर जाना लिखा है । सरसठ समयो (बान-बेध समयो) में पृथ्वीराज की धनुर्विद्या का वर्णन और अंत में पृथ्वीराज के शब्द-वेधी बाण से शहाबुद्दीन ग़ोरी का वध होना लिखा है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर इस नाटक की रचना की गई है, पर ये सब बातें ऐतिहासिक सत्य से परे हैं ।]

पात्र-परिचय

पृथ्वीराज चौहान—दिल्ली और अजमेर का राजा

चंद—महाकवि और पृथ्वीराज का मित्र

शहाबुद्दीन ग़ोरी—ग़ोर का सुल्तान (सन् ११९२)

अख़्तर—सिपाही

काल—तराइन के युद्ध के उपरांत

पृथ्वीराज की आँखें

[संध्या का समय । ग़ोर के क़िले में पृथ्वीराज क़ैद है । वह पैंतालिस वर्ष का प्रौढ़ व्यक्ति है । उसके शरीर से शौर्य अब भी फूट रहा है । चढ़ी हुई मूछें और रोबीला चेहरा । उसके हाथ साँकलों से बँधे हैं । अब वह अपने घुटनों पर दोनो हाथ रक्खे हुए सिर झुकाए बैठा है । साँकल का एक छोर उसके पैरों तक लटक रहा है, जो हाथों के संचालन-मात्र से ही झूलकर शब्द करने लगता है । उसके बाल बिखरे हुए हैं । डाढ़ी बढ़ आई है । वस्त्र बहुत मैले हो गए हैं । कहीं-कहीं जलने के निशान भी पड़ गए हैं । घुटने के पास फटा हुआ चूड़ीदार पैजामा है, जिस पर रक्त के धब्बे दिखाई पड़ रहे हैं, पैर में पुराना जूता है, जिस पर गर्द छा रही है । पृथ्वीराज आँखें बंद किए हैं । सामने खिड़की से हवा आ रही है, जिससे उसके बाल हिल रहे हैं । कुछ समय पहले थोड़ा पानी बरस चुका है, इसीलिये वायु में कुछ शीतलता आ गई है ।

दाहनी ओर महाकवि चंद बैठा हुआ है । उसकी आयु पृथ्वीराज की आयु के लगभग है । उसके कपड़े साफ़-सुथरे हैं । वेष में सादगी है, पर मुख पर दुःख की रेखाएँ अंकित हैं । वह पृथ्वीराज को करुणा-पूर्ण आँखों से देख रहा है । कुछ क्षणों तक दोनो स्थिर बैठे रहते हैं । फिर वेदना से सिहरकर पृथ्वीराज नीचे मुख किए ही, व्यथित स्वर में, बोलता है । बोलने के साथ हाथ हिलने से साँकल बज उठती है ।]

पृथ्वीराज—मत पूछो । कुछ मत पूछो । जिस क्षण ने पृथ्वीराज

को पृथ्वीराज न रहने दिया, उसकी—उस निर्दय क्षण की—बात मत पूछो। बड़ी कठिनाई से उस कष्ट को भुला सका हूँ। चंद! आखेट करते समय व्याघ्र के पंजे भी मुझे इस तीक्ष्णता से नहीं लगे। आह!

[सिर झुकाकर सोचता है।]

चंद—[दयार्द्र होकर] महाराज, यह आपका शरीर, जिससे शौर्य पसीना बनकर बहा करता था, आज इतना निस्तेज है! क्या गोर के आदमी इतने निर्दय होते हैं! एक शक्तिशाली राजा के साथ इतना पशुत्व!

पृथ्वीराज—पशुत्व! ओह, चंद! यदि उस समय तुम होते, तो काँप जाते! तुम्हारी लेखनी कुंठित हो जाती। मनुष्यता थर्रा उठती। आश्चर्य है, माता वसुंधरा यह सब कृत्य कैसे देखती रही! और, इस पृथ्वीराज के शरीर पर इतना अत्याचार देख लेने पर भी वह माता कहला सकती है? कवि, घोषणा कर दो कि यह वसुंधरा माता नहीं, पिशाचिनी है!!

[भावोन्मेष में काँपता है।]

चंद—महाराज!

पृथ्वीराज [उसी भावावेष में] और यह हवा! इस समय शरीर से लगकर सुख देना चाहती है? पर उस समय? पापिनी..!

[घृणा-प्रदर्शन]

चंद—यह उन्माद!

पृथ्वीराज—[तीव्रता से] चुप रहो, चंद! इतना सहने के बाद भी मैं जीवित हूँ, आश्चर्य है। भयंकर रात थी। प्रेयसी संयोगिता के बिना वह रात हड्डियान बन गई थी। अंधकार जैसे मेरी ओर घूर रहा था, मेरी आँखों में घुसकर। इतने में चार मशालें दिखलाई दीं। उनकी लौ इधर-उधर झूम रही थी। जैसे अंधकार-रूपी काले दैत्य

की जिह्वाएँ हों। [सोचते हुए] पाँच आदमी सामने आए। चार मशालची और एक उनका सरदार। सरदार के हाथ में एक छुरा था। वह बोला—क़ैदी, तेरी आँखें निकाली जायँगी !

[शैथिल्य-प्रदर्शन।]

चंद—'यह धृष्टता !' [भौंहें सिकोड़ता है।]

पृथ्वीराज—[उसी स्वर में] मैंने कहा.... मैंने कहा, क़ैद करने के बाद यह ज़ुल्म ? मनुष्यता से रहना सीखो, ख़ुदा के बंदो ! जान से मार डालो, पर एक राजा की इज़्ज़त रहने दो ! चंद, उसने कहा, चुप रह !

[गहरी साँस लेता है।]

चंद—[तड़पकर] क्या कहा ? चुप रह ?

पृथ्वीराज—हाँ, यही कहा। दिल्ली और अजमेर को भौंह के संकेत से नचानेवाले चौहान को ये शब्द भी सुनने पड़े ! यदि दिल्ली में ये शब्द मेरे कानों में पड़ते, तो .. तो...हाय, ज़बान लड़खड़ा रही है। बोला भी नहीं जाता।

चंद—[दुःख से] आह, आज महाराज पृथ्वीराज चौहान की यह दशा !

पृथ्वीराज—[अपने ही विचारों में] फिर .. फिर सबने मिलकर मुझे ज़ोर से पकड़ लिया ! मेरे हाथ-पैर बँधे थे। मैं बिलकुल असहाय था। चंद, उस समय जीवन में पहली बार—केवल पहली बार—मैंने अपनी आँखों को आँसुओं से भरा पाया !

चंद—[करुणा से] महाराज, आपका गला सूख रहा है, पानी पी लीजिए।

पृथ्वीराज—[चंद की बात न सुनकर अपने ही विचारों में, मानो वह दृश्य उसकी आँखों में झूल रहा है।] दो गरम सूजे मेरी आँखों के पास लाए गए। मुझे उनकी गर्मी

धीरे-धीरे पास आती हुई जान पड़ी। उस समय मुझे याद आया—मुझे याद आया—संयोगिता ने एक बार इसी प्रकार धीरे-धीरे अपने मुख को समीप लाते हुए इन्हीं आँखों का चुंबन किया था। उस समय उन अधरों की मादकता मेरे पास इसी प्रकार धीरे-धीरे आती हुई जान पड़ी थी!

चंद—[चंचल होकर] अब आगे मत कहिए, मैं नहीं सुन सकूँगा......

पृथ्वीराज—एक क्षण में उन्होंने उन गरम सूजों से मेरी पलकों को छेद डाला, और मेरी पुतलियों को जलाकर........

चंद—[अधीर होकर] अब न सुन सकूँगा यह क्रूरता-पूर्ण अत्याचार!

पृथ्वीराज—[शांत होकर] अच्छा, मत सुनो। पर इतना जान लो कि जिन आँखों में संयोगिता की मूर्ति अंकित थी, वे आँखें अब नहीं रहीं। जिन अतृप्त आँखों में सौंदर्य-सुधा-पान की मादकता थी, वे आँखें अब नहीं रहीं।

चंद—[दृढ़ता से] और, जिन आँखों ने क्रूर दृष्टि से कितने ही राजाओं को निस्तेज कर दिया, जिन आँखों ने रक्त-वर्ण होकर रणक्षेत्र में लोहा बरसा दिया, वे आँखें?

पृथ्वीराज—वे आँखें? उफ़, वे आँखें तो जयचंद के विश्वासघात की आग में जल गईं। कवि, क्या रेवा-तट के सत्ताईसवें समयों की याद दिलाना चाहते हो? इस समय मेरे सामने तुम्हारा 'रासो' कवि की कल्पना का साधारण अभ्यास-मात्र है। अब तो यह शरीर वह पृथ्वीराज चौहान नहीं रह गया।

चंद—महाराज.........!

पृथ्वीराज—[क्रोध से] बार-बार मुझे महाराज क्यों कह रहे हो? मैं एक क़ैदी हूँ।

[साँकल बज उठती है।]

चंद—पर, मेरे लिये नहीं। फिर आपका शरीर क़ैदी है, आत्मा? मुझे विश्वास है, आपकी आत्मा क़ैदी नहीं हो सकती। आप वही पृथ्वीराज चौहान हैं। उस समय आप भारत में थे, इस समय यहाँ। शेर पिंजड़े में बंद रहने पर भी शेर ही कहलाता है।

[गर्व की मुद्रा]

पृथ्वीराज—यदि शेर को शेर ही रखना चाहते हो, तो चंद, कहाँ है तुम्हारी तलवार? फाड़ दो मेरा यह वक्षःस्थल। पृथ्वीराज के गौरव से गिरे हुए इस प्राणी को अब प्राण की आवश्यकता नहीं। इस जीवन का एक-एक क्षण तुम्हारी तलवार की धार से बहुत पैना है। [साँकल का शब्द] लाओ, अपनी तलवार!

चंद—तलवार? वह तो मुहम्मद ग़ोरी के हुक्म से दरवाज़े पर ही मेरे हाथों से ले ली गई। मुझसे कहा गया कि मैं उसे भीतर नहीं ले जा सकता। वह तो दरवाज़े पर ही ले ली गई।

पृथ्वीराज—[दाँत पीसकर] ले ली गई? और हाथ? वे भी ग़ोरी ने नहीं काट लिए? नीच! नारकी! [ठहरकर] चंद, तुम प्राण-हीन होकर मेरे पास आए हो। जानते हो, वीरों के प्राण का नाम है तलवार!

चंद—जानता हूँ, पर सुलतान का हुक्म।

पृथ्वीराज—सुलतान का हुक्म? ग़ोरी का? और तुम उस हुक्म के आज्ञाकारी सेवक हो?

चंद—[सँभलकर] किंतु, किंतु, यह कटार [छिपी हुई कटार निकालकर] मैंने अपनी आत्मा की तरह छाती में छिपाकर रक्खी है। मैं इससे अपना काम कर सकता हूँ।

[तनकर खड़ा हो जाता है।]

पृथ्वीराज—[बड़ी प्रसन्नता से] मेरे अच्छे चंद, महाकवि, मित्र,

प्यारे ! आओ ! मेरे जीवन की श्मशान के समान भयानक आग शांत कर दो। लाओ, तुम्हारा माथा चूमूँ। हाय, मैं देख भी नहीं सकता, तुम्हारा माथा कहाँ है !

चंद—महाराज ! विचलित न होइए। मैं चौहान को इस दैन्यावस्था में नहीं देख सकता ! मैं अभी मृत्यु......

पृथ्वीराज—[बात काटकर] हाँ, देर न करो। देर न करो। मेरे चंद, महाकवि, मित्र......

चंद—महाराज, मैं देर न करूँगा। यह छुरी छाती में घुसकर शीघ्र ही इस दुःख से मुक्त कर देगी। लीजिए, चूमता हूँ यह कटार। [कटार चूमता है।] लाइए, अंतिम बार आपके चरण स्पर्श कर लूँ। [चरण स्पर्श करता है] प्रणाम। मैं आप पर नहीं, अपने ही शरीर पर आघात करूँगा, क्योंकि मैं आपकी यह दशा नहीं देख सकता।

[कटार ऊपर तानता है।]

पृथ्वीराज—[विचलित होकर] नहीं, नहीं।

[ज़ंजीर बज उठती है।]

मेरे चंद, यह नहीं हो......

[चंद आत्मघात करना ही चाहता है कि पीछे से मुहम्मद ग़ोरी निकलकर, हाथ रोककर, कटार छीन लेता है। ग़ोरी पैंतीस वर्ष का युवक है। शरीर गठा हुआ। मूछें तनी हुई। वह फ़ौजी वेष में है। कमर में तलवार है।]

ग़ोरी—[हँसकर] हँअ्, सरदार, ज़िंदगी इतनी नाचीज़ है ? यह दुनिया इसी तरह चलती है, और चलती रहेगी। तुम इतने मायूस क्यों होते हो ? और भोले सरदार ! क्या तुम जानते हो कि मेरे घर में क्या हो रहा है, इसका पता मुझे नहीं ? ग़ोर का सुलतान दीवारों में अपनी दृष्टि रखता है।

[चंद मलिन दृष्टि से ग़ोरी को देखता है ।]

ग़ोरी—[उत्साह से] पर वाह ! तुम कितने वफ़ादार हो ! अपने मालिक की यह हालत न देख सकनेवाले सरदार ! अपनी वफ़ादारी का इनाम माँगो ।

[चंद चुप रहता है ।]

ग़ोरी—कुछ नहीं ? बोलो ! अभी तो बोल रहे थे । अंधे का पैर चूम रहे थे । उसकी आँखें नहीं चूमते ? अहा, कैसी ख़ूबसूरत हैं !

[व्यंग्य दृष्टि]

चंद—ख़ूबसूरत ? उस शेर की आँखें अब उसके दिल में हैं ।

ग़ोरी—दिल में ? बहुत अच्छा । वह शेर तुम्हें शायद उन्हीं आँखों से देख रहा है । पृथ्वीराज तू मुझे किन आँखों से देख रहा है ?

पृथ्वीराज—[स्थिर भाव से] ग़ोरी, तू देखने लायक़ भी नहीं है । अपनी इन अंधी आँखों से अगर मैं देख सकता, तो भी मैं तुझे देखना पसंद न करता । अच्छा हुआ, तूने इनका उजेला ले लिया । [ठहरकर] मैं तुझे क्या देखूँ ? तू भूल गया, उस बार मेरे तीरों से तेरी टोपी उड़ी थी ! उस वक़्त मैंने तुझे पूरी नज़र से देखा था । जब तू मेरे सामने से भागा था, तब मैंने तुझे पूरी नज़र से देखा था । तू भूल गया ? मुझे दुःख है, सरदारों के कहने में आकर मैंने तेरा पीछा नहीं किया । मेरे तीर तेरे शरीर को न बेध सके......... !

[निराशा]

ग़ोरी—[लापरवाही से] ख़ैर, तेरे तीर न सही, मेरे मामूली सूजे तेरी आँखों को बेध सके । एक ही बात है, पर तेरे तीर...

चंद—[बीच ही में] सुलतान, पृथ्वीराज के तीर—पृथ्वीराज आवाज़ पर तीर मारता है ।

गोरी—[आश्चर्य से] आवाज़ पर ! मारता होगा, पर अब तो वह अंधा है।

चंद—सुलतान, आवाज़ पर तीर मारने के लिये आँख की ज़रूरत नहीं होती।

गोरी—सच ?

[आश्चर्य प्रकट करता है।]

चंद—बिलकुल सच। कल अपने अंधे वीर का यही तमाशा देखिएगा। यही मेरा इनाम समझें।

गोरी—[पृथ्वीराज की ओर देखकर] शाबाश क़ैदी, [चंद से] अच्छा, चंद ! कल तुम्हारी ख़ातिर इस अंधे की तीरंदाज़ी भी देख लूँगा। अच्छा, अब देर हो रही है। तुम मेरे साथ चल सकते हो ? ख़ुदकुशी पर तुमसे एक कहानी कहनी है। क़ैदी से मिलने का वक़्त अब पूरा हो गया। अब एक मिनट भी नहीं।

चंद—यह बतलाना तो सिपाही का काम है, आपका नहीं। आप तो सुलतान हैं।

गोरी—तुम हमेशा मुझे सुलतान के बजाय सिपाही ही समझो, सिर्फ़ सिपाही।

[दृढ़ता से खड़ा होता है।]

चंद—[पृथ्वीराज से] अच्छा, तो अब चलता हूँ। प्रणाम महाराज पृथ्वीराज !

[प्रणाम करता है।]

गोरी—[व्यंग्य से] महाराज ['महा' पर ज़ोर देकर] पृथ्वीराज ! हा हा हा !

[अट्टहास करता है।]

[ज़ोर से] अख़्तर !

[अख़्तर सिपाही का प्रवेश। पूरी वर्दी में। तीस वर्ष का

जवान ज्ञात होता है। मुस्तैदी से प्रवेश। आकर सलाम करता है।]

ग़ोरी—महाराज ['महा' पर ज़ोर देकर] पृथ्वीराज की आँखों में आज रात को नीबू और मिर्च पड़ेगा। रात के ग्यारह बजे। कितने बजे?

अफ़सर—ग्यारह बजे।

ग़ोरी—क्या?

अफ़सर—नीबू और मिर्च।

ग़ोरी—हाँ, नीबू और मिर्च पड़ेगा। समझे।

पृथ्वीराज—[दृढ़ता से उसी स्वर में] नीबू के रस में नमक मिलाना होगा, समझे।

ग़ोरी—[मुस्कुराकर सिपाही से] अच्छा, इसकी मुराद पूरी करो। [पृथ्वीराज से] क़ैदी! कल सुबह मिलूँगा। रात को अपनी आँखों में नमक-मिर्च डालकर आराम से सोना।

[तनकर खड़ा होता है।]

पृथ्वीराज—बहुत अच्छा। ग़ोरी, मुझसे सलाम करके जाना। मैं बादशाह हूँ।

ग़ोरी—[व्यंग्य से मुस्कुराकर] बहुत अच्छा बादशाह, सलाम।

[चंद को साथ लेकर ग़ोरी का गर्व से प्रस्थान।
पृथ्वीराज स्थिर भाव से बैठा रहता है।]
